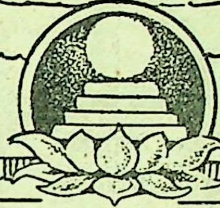
VED PARKASH 1970 G.K.V.

वेद प्रकाश





वेदोऽखिलो धर्म-मूलम्

पाप विनाश प्रार्थना

अप नः शोशुचदघमग्ने शुशुग्ध्या रयिम् ।
अप नः शोशुचदघम् ॥ ऋ० १ । ९७ । १ ॥

(अग्ने) हे ज्योतिर्मय देव ! (नः अघम्) हमारा विनाशकारी महापाप (अपशोशुचत्) स्वयं शोकान्वित होकर विनष्ट हो जाय। हे देव ! (रयिम्) ज्ञानादिक धन (आ शुशुग्धि) सब प्रकार से हमको दीजिये हम जिससे पाप न करें (नः अघम् अप शोशुचत्) हमारा अघ विनष्ट हो ।

सुक्षेत्रिया सुगातुया वसूया च यजामहे ।
अप नः शोशुचदघम् ॥ ऋ० १ । ९७ । २ ॥

हे परमात्मन् ! (सुक्षेत्रिया) सुशोभनीय क्षेत्र के लिये (सुगातुया) सुशोभनीय मार्ग के लिए और (वसूया च) सुशोभनीय धन के लिये (यजामहे) हम आपके उद्देश से यज्ञ करते हैं (अप नः शोशुचत् अघम्) हमारा पाप नष्ट होवे ।

प्र यत्ते अग्ने सूरयो जायेमहि प्र ते वयम् ।
अप नः शोशुचदघम् ॥ ऋ० १ । ९७ । ४ ॥

(अग्ने) हे ज्योतिर्मय महादेव ! यह प्रसिद्ध है कि (यत्) जिस हेतु (ते सूरयः) आपके पूजक और आपके भक्तजन सदैव (प्र) विविध प्रकार से जगत्प्रसिद्ध होते हैं अतः (ते वयम्) आपके सेवक हम भी (जायेमहि) आपकी कृपा से पुत्रपौत्रादि रूप से बहुत होकर विख्यात हों। (अप नः अघं शोशुचत्) हमारा पाप विनष्ट हो ।

हमारी प्रकाशित प्रसारित पुस्तकें

महात्मा आनन्द स्वामी कृत

तत्त्वज्ञान	३-००
प्रभुदर्शन	२-५०
प्रभुभक्ति	१-५०
आनन्द गायत्री कथा	०-७५
एक ही रास्ता	१-००
शंकर और दयानन्द	०-७५
सत्यनारायण व्रत कथा	०-७५
भक्त और भगवान्	१-००
मानव जीवन गाथा	१-००
उपनिषदों का सन्देश	१-५०
घोर घने जङ्गल में	२-५०
महामन्त्र	१-२५
सुखी गृहस्थ	१-००
बोध कथाएं	३-५०
मानव और मानवता	४-५०

प्रो० नित्यानन्द वेदालंकार कृत

पूर्व और पश्चिम	७-५०
जीवन की राहें	४-००
प्रार्थना दीप	२-००
सन्ध्या विनय	१-५०
सु-राज्य की रूपरेखा	०-५०

ब्र० जगदीश विद्यार्थी कृत

दयानन्द सूक्ति और सुभाषित	४-००
विद्यार्थी लेखावली	३-००
वैदिक प्रश्नोत्तरी	२-००
वेद सौरभ	२-००
वैदिक उदात्त भावनाएं	२-००
ईशोपनिषद्	२-००
कुछ करो कुछ बनो	२-००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	१-५०
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	१-५०
दिव्य दयानन्द	१-२५
प्रार्थना प्रकाश	१-२५
प्रभात वन्दन	१-२५
हास्य विनोद	१-००
विष्णु पुराण की आलोचना	०-४०
ऋग्वेद शतकम्	१-००
अथर्ववेद शतकम्	१-००
यजुर्वेद शतकम्	१-००
सामवेद शतकम्	१-००

पं० भगवद्दत्त कृत

भारतीय संस्कृति का इतिहास	६-००
आर्य राजनीति के मूल तत्त्व	०-३०

महर्षि दयानन्द कृत

उपदेश मंजरी	२-५०
आत्मकथा	०-४०
स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश	०-१०
वेदान्तिध्वान्त निवारण	०-२०
वेदविरुद्ध मत खण्डन	०-३७
शिक्षापत्रीध्वान्तनिवारण	०-३७
आर्याभिविनय	०-७५
आर्योद्देश्यरत्नमाला	०-१५
ऋग्वेद भाष्य का प्रथम सूक्त	०-२५
भ्रान्ति निवारण	०-३७
व्यवहारभानु	०-३०
भ्रमोच्छेदन	०-२५
गोकरुणानिधि	०-२०
गृहस्थाश्रम	०-६२
काशी शास्त्रार्थ	०-२०
सत्यधर्म विचार	०-२५
आर्यसमाज के नियमोपनियम	०-१०
ईशोपनिषद्	०-२५
बालशिक्षक	०-३७

पं० रामचन्द्र देहलवी कृत

देहलवी लेखावली	३-५०
ईश्वर ने दुनिया क्यों बनाई ?	०-४०

महात्मा नारायण स्वामी कृत

आर्य समाज क्या है	०-७५
वैदिक यज्ञ रहस्य	०-३७

पं० आर्य मुनि कृत

ईश-उपनिषद्	०-४०
केन-उपनिषद्	०-५०
माण्डूक्य ,,	०-३१
ऐतरेय उपनिषद्	०-५०
तैत्तिरीय ,,	१-२५

प्रो० सुरेशचन्द वेदालंकार कृत

मन की अपार शक्ति	१-२५
आकर्षक व्यक्तित्व कैसे बने ?	१-५०

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय कृत

विवाह और विवाहित जीवन	२-५०

पं० रामगोपाल विद्यालंकार

दयानन्द चित्रावली	२-५०

स्वामी ब्रह्ममुनि कृत

बृहदारण्यक उपनिषद् कथा	३-००

पं० भीमसेन कृत

श्वेताश्वतर उपनिषद्	१-००

स्वामी अच्युतानन्द

व्याख्यानमाला	२-५०

पं० विश्वनाथ विद्यालंकार

बाल ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका	०-७५

पं० हरिश्चन्द्र विद्यालंकार

वैदिक शिष्टाचार	०-३०

त्रिलोकचन्द विशारद

महर्षि दयानन्द	१-००
स्वामी श्रद्धानन्द	१-००
गुरु विरजानन्द	०-५०

पं० मदनमोहन विद्यासागर

आर्य सिद्धान्तदीप	१-२५

स्वामी वेदानन्द

वेदपरिचय	०-३७
स्वाध्याय संग्रह	३-००

स्वामी श्रद्धानन्द कृत

हिन्दु संगठन	१-००

पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

गोरक्षा परम कर्तव्य	०-५०

पं० अत्रिदेव विद्यालंकार

स्त्रियों का स्वास्थ्य और रोग	३-००

पं० चमूपति एम० ए०

जीवन ज्योति	४-००

❀ ओ३म् ❀

वेद प्रकाश

वर्ष १८ अङ्क ६	संस्थापक—गोविन्दराम हासानन्द पौष २०२६, जनवरी १९७०	वार्षिक मूल्य ३-००

सम्पादक : विजयकुमार   आदरी सम्पादक : ब्र० जगदीश विद्यार्थी

वेद प्रवचन

★ स्व० गंगाप्रसाद उपाध्याय

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः ।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शांतिवाम् ।।
(अथर्ववेद काण्ड ३, सूक्त ३०, मंत्र २)

अन्वय : पुत्रः पितुः अनुव्रतः भवतु । पुत्रः मात्रा सह संमनाः भवतु । जाया पत्ये मधुमतीं शान्तिवां वाचं वदतु ।।

अर्थ : पुत्र पिता का अनुव्रत हो । अर्थात् उसके व्रतों को पूरा करे । पुत्र माता के मन को संतुष्ट करने वाला हो । पत्नी को चाहिये कि पति के साथ मीठी और शान्ति-प्रद वाणी बोले ।

व्याख्या—इस वेदमंत्र में वे आरंभिक साधन बताये हैं जिनसे गृहस्थ सुव्यस्थित रह सकता है ।

ऊपरी दृष्टि से ऐसा लगता है कि जिन बातों का इस मंत्र में प्रतिपादन है वे अतिसाधारण और चालू हैं; उनको असभ्य और अशिक्षित लोग भी समझते हैं । उनके लिए वेदमंत्र की आवश्यकता नहीं । परन्तु गम्भीर दृष्टि से पता चलेगा कि बहुत-सी बातें विचारणीय और ज्ञातव्य हैं । उदाहरण के लिए दो शब्दों पर विचार कीजिये—एक 'पुत्र' और दूसरा 'अनुव्रत' । यहाँ केवल इतनी ही बात नहीं है कि लड़कों को माँ-बाप की सेवा करनी चाहिए और उनकी आज्ञा का पालन करना चाहिए यद्यपि जिस किसीने संसार में सबसे पहले लोगों को यह उपदेश किया होगा उस समय इतनी छोटी-सी बात भी बहुत बड़ी और अद्भुत मालूम होती होगी । आज भी यद्यपि कथनमात्र से इस बात को सभी जानते हैं, फिर भी व्यवहार में तो अत्यन्त न्यूनता दिखाई देती है । आज्ञाकारी राम तो कथाओं का ही विषय है । व्यवहार में तो जिन घरों में हिरण्य-कश्यप नहीं हैं वहाँ भी किसी न किसी व्याज से सन्तान प्रह्लाद का स्वांग खेलने के लिए उत्सुक रहती है । कुछ ऐसे भी मनचले हैं जो ऐसी शिक्षाओं को असामयिक और प्राचीन काल की दास-प्रथा का प्रतीक समझते हैं । बेटा बाप की आज्ञा क्यों माने ? इस प्रकार प्राचीन आचार-शास्त्र के बहुत-से छोटे-मोटे नियम हैं जो आजकल गर्हित और भावी विकास के बाधक समझे जाते हैं । यों तो हर मानवी-संस्था में समय-समय पर दोष आ जाया करते हैं और उनके सुधार की आवश्यकता होती । यदि संसार के पितृलोग हिरण्य-कश्यप बन जायें तो ऐसी संस्थायें भी प्रशंसा की

दृष्टि से देखी जायेंगी जो बालकों में प्रह्लाद की भावनाओं का प्रसार करें। क्योंकि परिवार का संगठन तो तभी सुरक्षित रह सकता है जब पिता और पुत्र दोनों धार्मिक हों। कोढ़ी माँ-बाप की संतान को उनसे अलग रक्खा जाता है कि वह कोढ़ दूसरी पीढ़ी में भी न आ जाय! चोर और डाकुओं की सन्तान के भी पृथक्करण की आवश्यकता होती है। परन्तु यह तो अपवादमात्र हैं। यह साधारण जीवन का आचार-शास्त्र नहीं अपितु आचार-सम्बन्धी हस्पतालों की नियमावली है जो सामान्य जीवन से कुछ भिन्नता रखती है।

अच्छा! आइये पहले 'अनुव्रत' शब्द पर विचार करें। इसके लिये देखना यह है कि सृष्टिक्रम में सन्तानोत्पत्ति की व्यवस्था क्यों रक्खी गई? यदि कोई परिवार सन्तानहीन ही लुप्त हो जाय तो क्या हानि! और यदि एक क्षण में समस्त संसार नष्ट हो जाय तो किसका क्या बिगड़े? परन्तु यह प्रश्न वही कर सकते हैं जो जीव की स्वतंत्र सत्ता और उसकी आवश्यकताओं पर विचार नहीं करते। परमात्मा ने यह सृष्टि खेल के लिए नहीं बनाई। यह जीव के विकास के लिए बनाई गई है। दुर्गुणों से बचने और सद्गुणों को ग्रहण करने के लिए बनाई गई है। पशु-पक्षियों की बुद्धि इतनी कम है कि उनके आचार की व्यवस्था ईश्वर ने सीधी अपने हाथ में रक्खी है। जैसे बहुत छोटे बालकों पर बुद्धिमान् पिता उनकी व्यवस्था का भार नहीं छोड़ता, परन्तु विद्वान् और परिपक्व संतान अपना विधान आप बनाने में स्वतन्त्र होती है। यही प्रथा पशु-पक्षियों की है। मधुमक्खी को छत्ता बनाने या बया को घोंसला बनाने के लिए किसी इंजीनियरिंग कालेज की आवश्यकता नहीं पड़ती। परन्तु मनुष्य का बच्चा तो मुँह धोने का नियम भी सीखता है। अतः स्पष्ट है कि मानव-जाति के लिए एक आचार-शास्त्र चाहिए जो परम्परा से चालू रहे। इसी का नाम व्रत है। जब यज्ञोपवीत दिया जाता है तो एक मन्त्र पढ़ते हैं—

"अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि। तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्। इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि।"

(यजुर्वेद १।५)

अर्थ—मैं एक व्रत करता हूँ। परमात्मा इस व्रत के पालन में मेरी सहायता करें। वह व्रत क्या है? "अनृतात् सत्यमुपैमि"—असत्य का त्याग और सत्य का ग्रहण। आर्यसमाज के प्रवर्तक ने आर्यसमाज के नियमोंमें इसीलिए इस व्रतको विशेषस्थान दिया है। इस नियम पर प्रत्येक मनुष्य के विकास का आधार है। महात्मा गांधी का समस्त जीवन सत्य की खोज और उसके पालन में व्यतीत हुआ। जिसने सत्य की खोज नहीं की वह सत्य का पालन क्या करेगा! जो लोग 'श्रद्धा' का अर्थ लेते हैं सत्य की खोज से संकोच और प्रचलित प्रथाओं या गुरु-जनों पर अन्धविश्वास, वे 'श्रद्धा' शब्द की व्युत्पत्ति[१] तथा अर्थों से अनभिज्ञ हैं। 'श्रद्धा' दो शब्दों से बनता है, 'श्रत्' अर्थात् सत्य और 'धा' अर्थात् धारण करना। अतः श्रद्धा का भी वही अर्थ है जो "अनृतात् सत्यमुपैमि" का। प्रत्येक बच्चे को यह व्रत लेना पड़ता है और आशा की जाती है कि आयुपर्यन्त इसका पालन करे। मानव-जाति के कल्याण के लिए यह आवश्यक है और हर गृहस्थ को यह व्रत लेना चाहिए।

परन्तु यह परम्परा तो तभी चल सकती है जब भावी सन्तान पूर्वजों के व्रत का आदर करे। इसी-लिये कहा कि पुत्र को पिता का 'अनुव्रत' होना चाहिए। यह दाय भाग में सबसे बड़ी सम्पत्ति है जो कोई पिता अपने पुत्र के लिए या कोई आचार्य अपने शिष्य के लिए छोड़ सकता है। 'अनुव्रत' का प्रश्न तो तभी उठेगा जब 'व्रत' होगा। माता-पिता के जो आचरण आकस्मिक या स्वाभाविक रूप से इस 'व्रत' के अन्तर्गत नहीं वे अनुपालनीय

१. बट्, श्रत्, सत्रा, श्रद्धा, इत्था, ऋतम् इति षट् सत्यनामानि। (निघण्टु ३—१०) 'सत्य' के यह छः पर्याय हैं।

भी नहीं ; इसीलिये गुरु उपदेश देता है कि हमारे जो-जो सुचरित हैं वही पालनीय हैं (नो इतराणि) अन्य नहीं। व्यक्तिगत घटनायें नहीं अपितु वैदिक संस्कृति ही प्रत्येक माता-पिता को करणीय और प्रत्येक पुत्र या पुत्री को अनुकरणीय है।

अब 'पुत्र' शब्द के अर्थों पर विचार कीजिये। हर बच्चा जो उत्पन्न होता है पुत्र कहलाने के योग्य नहीं है। यद्यपि शास्त्र के विधान से उसको 'पुत्र' बनने की योग्यता प्राप्त करनी चाहिये। बेटे के लिये संस्कृत में अनेक पर्याय हैं जैसे—तुक्, तोकं, तनयः, तोक्म, तक्म, शेषः, अप्नः, गयः, जाः, अपत्यं, यहुः, सूनुः, नपात्, प्रजा, बीजम् इति पंचदश अपत्यनामानि (निघण्टु २।२)। परन्तु पुत्र का एक विशेष अर्थ है। यास्काचार्य ने निरुक्त में पुत्र शब्द की यह व्युत्पत्ति दी है 'पुत्+त्र'। पुत् नाम है नरक का। नरक से जो रक्षा करे उसे पुत्र कहते हैं। मनुस्मृति के ९वें अध्याय का १३८वां श्लोक भी यही कहता है—

पुंनाम्नो नरकाद् यस्मात् त्रायते पितरं सुतः।
तस्मात् पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयंभुवा॥
(मनु० ९। १३८)

पौत्रदौहित्रयोर्लोकेविशेषो नोपपद्यते।
दौहित्रोपि ह्यमुत्रैनं संतारयति पौत्रवत्॥
(मनु० ९। १३९)

'पुत्' अर्थात् नरक से जो तारे वह है पुत्र। पुत्र के अन्तर्गत लड़के और लड़की के लड़के-लड़कियां भी आते हैं। क्योंकि वे सब ही नरक से तारने वाले हैं।

यह नरक-त्राण क्या है? इस पर विचार करना चाहिये। पौराणिकों ने नरक को एक स्थान-विशेष माना है जहां पापी लोग जाते हैं। और यदि पुत्र मृतकों का श्राद्धतर्पण करता है तो उसके पितृगण नरक से छूटकर स्वर्ग चले जाते हैं। वैदिक कर्मफलवाद के सिद्धान्त से यह सर्वथा विरुद्ध बात है। फिर प्रश्न है कि पुत्र पिता को नरक से कैसे छुड़ाता है?

कोई मनुष्य एक जन्म में पूर्ण विकास या परमपद को प्राप्त नहीं हो सकता। जन्म-जन्मान्तर का अभ्यास आवश्यक है। यह पुनर्जन्म के द्वारा होता है। जो आज बाप कहलाता है वह कल बेटा होगा। जिसको अगली पीढ़ी कहते हैं वह पिछली पीढ़ी हो जायगी। और अगली पीढ़ी की शिक्षा-दीक्षा का भार उसी पीढ़ी पर होगा। आज मैं और मेरे समवयस्क पितृश्रेणी में हैं। उनके ऊपर संतान की शिक्षा का भार है। कल हम मरकर बच्चे होंगे और जिनको हम पुत्र-पौत्र कहते हैं वे पितृगण कहलायेंगे और हमारी शिक्षा का भार उनके ऊपर होगा। यह पिता-पुत्र का सम्बन्ध अनादि काल से प्रवाह-चक्र के समान चला आता है। यदि हमारी सन्तान ने हमारी सुरक्षित संस्कृति को अपने हाथ में लेकर उसे समुन्नत किया तो वह समुन्नत संस्कृति हमारे दूसरे जन्म में हमारी सहायक होगी और इस प्रकार हमारे वर्तमान पुत्र अपने सुकर्मों के द्वारा हमारे कर्म और विकास के लिए उत्कृष्ट क्षेत्र छोड़ सकेंगे। इसी का नाम है नरकत्राण या पुत् नाम नरक से रक्षा। प्रत्येक अतीत पीढ़ी के जीवात्मा अगले जन्म में भावी बन जाते हैं और उनको अपनी पिछली पीढ़ी वालों के निर्मित क्षेत्र की अपेक्षा और आकांक्षा होती है।

एक दृष्टान्त लीजिये। आज हमारे पुत्रों ने अपनी योग्यता से देश-देशान्तरों में वैदिक भाषा, वैदिक परम्पराओं और वैदिक संस्कृति का प्रचार कर दिया। जब हमने दूसरा जन्म लिया तो ये परम्परायें उस जन्म में हमारी सहायक होंगी। यदि हमारी सन्तान की भूलों से वैदिक परम्परायें नष्ट हो गईं तो हम ऐसी दुनिया में जन्म लेंगे जो अवैदिक और प्रतिकूल होगी। अतः हमको बड़ी कठिनाई होगी। यही नरक है।

कल्पना कीजिये कि आप एक बाग लगाते हैं और उसका निरीक्षण अपने लड़कों पर छोड़कर चार वर्ष के लिए विदेश चले जाते हैं। अब यदि आपके लड़के योग्य हैं तो बाग को समुन्नत करेंगे और जब आप विदेश से लौटेंगे तो बाग अच्छा मिलेगा। परन्तु यदि सन्तान ने प्रमाद किया और बाग उजड़ गया तो आपको नये सिरे से काम करना

पड़ेगा। यही स्वर्ग और नरक है[1] और यह आपके विकास में साधक या बाधक है। स्वामी दयानन्द से पूर्व की सैकड़ों पीढ़ियों के लोग यदि यह समझते कि अपने पूर्वजों के नरकत्राण की दृष्टि से वैदिक-धर्म का लोप न होने दें तो स्वामी दयानन्द को फिर से वैदिक-धर्म का जीर्णोद्धार करने का कष्ट न उठाना पड़ता और उनका जीवन आरंभिक कक्षा की शिक्षा देने के स्थान में उच्च कक्षा की शिक्षा देने में काम आता। कल्पना कीजिये कि मैं मरकर अरब में पुनर्-जन्म लूं तो वहां अवैदिक इस्लाम का प्रचार पाऊंगा और अपने पूर्वजन्म के संस्कारों के प्राबल्य के आधार पर यदि वैदिक जीवन व्यतीत करना चाहूं तो कितनी कठिनाई होगी! परन्तु यदि इस पीढ़ी में वहां वैदिक धर्म का प्रचार हो जाय तो मुझे कितनी सुविधा हो! वैदिक संस्कृति में पले हुए वैदिक व्रतों के व्रती पिताओं के पुत्रों का कर्त्तव्य है कि अपने पितृगण के भावी क्षेत्र को अनुकूल बनाने के लिए पिताओं के अनुव्रत हों। इस प्रकार वे अपने और अपने पीछे आने वालों के लिए क्षेत्र तैयार कर सकेंगे। व्यक्ति तो मर चुकते हैं परन्तु संस्कृतियां बनी रहती हैं। कुलों की सन्तति, राज्यों को संतति, धन-सम्पत्ति की संतति से कहीं मूल्यवाली है संस्कृति की संतति। इसी संतति को स्थिर या चिरस्थायी बनाने के हेतु हम सन्तान चाहते हैं। संस्कृति की सन्तति मुख्य चीज है; वही साध्य है और संतान उस संतति का साधन है।

अब कहा कि पुत्र को "मात्रा संमना." माता के साथ समान मन वाला होना चाहिये। माता प्रेम की निधि है। माता से अधिक प्रेम तो कोई करता ही नहीं और प्रेम एक प्रकार का गोंद है जिससे अनैक्य में ऐक्य उत्पन्न होता है। स्वार्थ में परमार्थ आता है। दानवता में मानवता का संचार होता है। अतः अपने मानसिक विकास का सबसे बड़ा साधन है माता के स्नेह को स्मरण रखना। माता का कृतज्ञ होना ही मनुष्य के आत्म-निर्माण की पहली सीढ़ी है।

वेद के पिछले चरण में पत्नी के लिए उपदेश है कि पति के साथ मीठी और शान्तिप्रद वाणी बोले। पुरुष स्वभाव से कुछ कर्कश होता है और स्त्री का स्वभाव कोमल होता है। पुरुष दांत है तो स्त्री जीभ है। जीभ और दांत का सामीप्य है। कर्कशता और कोमलता का सम्मिलन है। समस्त शरीर में जहां नर्म पेशियां हैं वहां कठोर अस्थियां भी हैं; यदि हड्डियां ही होतीं, मांस नहीं होता तो शरीर का व्यापार कैसे चलता? शरीर शरीर न होता, पत्थर की चट्टान होता। और यदि पेशियां ही होतीं तो यह ढांचा ही न होता। हम चल-फिर न पाते। अतः कठोर वस्तुओं का अपना धर्म पालने के लिए कोमल वस्तुओं के सामीप्य, सान्निध्य और साहाय्य की आवश्यकता है। मशीन को चालू रखने के लिए तेल की आवश्यकता होती है। गृहस्थ के जटिल जीवन में पत्नी अपनी मधुर वाणी से कर्कशता को कोमल बनाये रखती है। जब पति बाहर के व्यापार या व्यवहार से थका-मांदा झुंझ-लाया हुआ सायंकाल को घर लौटता है तो पत्नी अपनी मधुर स्वागतकारिणी वाणी से सारी थका-वट दूर कर देती है। पत्नी वस्तुतः पत्नी अर्थात् पति की रक्षिका बन जाती है। यह आनन्द केवल वैवाहिक जीवन में ही प्राप्त हो सकता है। अन्यत्र नहीं। इसीलिए पत्नी को 'जाया' कहा। न केवल इसलिए कि उससे पुत्र उत्पन्न होगा जो उसके कुल और नाम को स्थिर रखेगा—यह तो गृहस्थ का एक स्थूल पक्ष है—परन्तु इसलिए भी कि पत्नी की मीठी बोली पति के लिये प्रतिदिन नये जीवन का संचार करती है। विवाह-संस्कार के समय इसी बात को दृष्टि में रखकर ऋग्वेद के इन मंत्रों का विनियोग रक्खा गया है—

मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः।
माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः॥
मधु नक्तमुतोषसो मधुमत् पार्थिवं रजः।
मधु द्यौरस्तु नः पिता॥
मधुमान् नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तु सूर्यः।
माध्वीर्गावो भवन्तु नः॥

(ऋग्वेद मंडल १, सूक्त ९०, मंत्र ६—७—८)

१. मिलान के लिये देखिये—कृतं लोक पुरुषो अभिजायते। (शतपथ ब्राह्मण ६—२—२—२७) पुरुष जैसा लोक अपने लिए बनाता है वैसा ही लोक उसको दूसरे जन्म में प्राप्त होता है।

तीन लोक और उनके जीतने का उपाय

★ श्री दीनानाथ सिद्धान्तालङ्कार

मनुष्य तीन वस्तुओं की कामना करता है, सुख, शांति और आनन्द। बातचीत में हम प्रायः इन तीनों का इकट्ठा प्रयोग करते हैं और यही समझते हैं कि इनमें कोई भेद नहीं है। पर आध्यात्मिक दृष्टि से इन तीनों में जहाँ भेद है, वहाँ इनकी प्राप्ति के साधन भी पृथक्-पृथक् हैं। सुख इन्द्रियों का विषय है, शान्ति मन द्वारा अनुभूत की जाती है और आनन्द की प्राप्ति केवल आत्मा के द्वारा ही हो सकती है। जीवन की इन तीनों स्थितियों को, उपनिषदों की भाषा में क्रमशः मनुष्य लोक, पितृ-लोक और देव लोक कहा जाता है। बृहदारण्यक उपनिषद् में इस सम्बन्ध में एक बड़ा सारगर्भित प्रसंग आता है। याज्ञवल्क्य ऋषि जब अपनी पत्नी कात्यायनी को आत्मज्ञान का उपदेश दे चुके तब कात्यायनी देवी के एक प्रश्न के उत्तर में उन्होंने बताया कि सुखप्राप्ति के लिए मनुष्यलोक को, शान्तिप्राप्ति के लिए देवलोक को किस प्रकार जीता जा सकता है। बृहदारण्यक उपनिषद् के पंचम ब्राह्मण का १६वां श्लोक इस प्रकार है—

अथ त्रयो वाव लोकाः। मनुष्य लोकः, पितृ-लोकः, देवलोकः। मनुष्यः लोकः पुत्रेणै जय्यः, नान्यर्थ कर्मणः म। कर्मणा पितृलोकः, विद्यया देव लोकः। देवलोकः वै लोकानां श्रेष्ठस्त्रस्नात विद्यां प्रशंसन्ति।"

अर्थ—तीन लोक हैं। मनुष्यलोक, पितृलोक और देवलोक। मनुष्यलोक पुत्र से ही जीता जा सकता है और किसी कर्म से नहीं। पितृलोक कर्म द्वारा और देवलोक विद्या द्वारा। देवलोक सब लोकों में श्रेष्ठ है इसलिए विद्या की प्रशंसा की जाती है।

पुत्र दो प्रकार के

पुत्र दो प्रकार के होते हैं—औरस और मुखज। पहले वे जो पति-पत्नी के रज-वीर्य के संयोग से उत्पन्न होते हैं और दूसरे आचार्य-मुख से निकले शब्दों के प्रभाव से आत्मा का विकास करते हुए अपने को आचार्य-पुत्र समझते हैं। सुयोग्य शिष्य सदा आचार्य के नाम को जीवित रखते हैं।

पुत्र से पुत्री का भी ग्रहण

पुत्र शब्द से केवल लड़के का ग्रहण नहीं होता किन्तु लड़का-लड़की दोनों का ही। वस्तुतः पुत्र शब्द का अर्थ सन्तान ही है। निरुक्त में यास्क मुनि कहते हैं—

"अविशेषेण मिथुनाः पुत्राः दायादा इति" अर्थात् पुत्र शब्द से बिना भेद के, दोनों पुत्र-पुत्री का ग्रहण होता है और दोनों ही जायदाद के अधिकारी होते हैं। निरुक्तकार ने इस प्रसंग में 'मनुस्मृति' का यह श्लोक उद्धृत किया है—

अविशेषेण पुत्राणां दायो भवति धर्मतः।
मिथुनानां विसर्गादौ मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत्॥

पुत्र शब्द से जहाँ बिना भेद के दोनों का ग्रहण होता है, वहाँ धर्मानुसार जायदाद दोनों को मिलती है, ऐसा सृष्टि के आदि में स्वयंभू-पुत्र मनु ने कहा है। पुत्री को सम्पत्ति किस रूप में दी जाए, यह तो देश, काल और समाज की स्थिति पर निर्भर करता है। 'पुत्र' शब्द के धात्वर्थ और शास्त्रों द्वारा की गयी व्याख्या से जहाँ पुत्र-पुत्री में भेद बुद्धि न रखने का संकेत मिलता है, वहाँ इनके कर्त्तव्यों पर भी प्रकाश पड़ता है। पुत्र और इसके भावद्योतक शब्दों के ५ अर्थ हैं—

(१) पुन्नाम नरक रमस्मात् भायत इति पुत्रः।

'पुत्र' का अर्थ नरक (दुःख) है, उससे रक्षा करने वाला पुत्र है। नरक (दुःख) का अर्थ केवल शारीरिक व बाह्य दुःख ही नहीं किन्तु आध्यात्मिक आधिदैविक, आधिभौतिक—तीनों प्रकार के दुःखों से है।

(२) 'पुत्र' में दो अक्षर हैं:—'पुत्+र'—पुत्=अभाव, र=पूरा करना, अर्थात् अभावों को पूरा करने वाला।

(३) वेद में पुत्र को 'शेष' कहा गया है। निरुक्त में इसकी व्याख्या की गई है "शेष इत्यपत्य-नाम शिष्यते प्रयतः" जो प्रयत्नपूर्वक बचा लिया जाता है, वह शेष, अर्थात् अपत्य है। माता-पिता के मरने के पश्चात् सन्तान ही बच जाती है और माता-पिता भी उसे बचाने के लिए सदा प्रयत्नशील रहते हैं।

(४) अपत्यम् "कस्यादपत्यं अपतनं भवति नाने न पततीतिवा"।

पुत्र को 'अपत्य' इसलिए कहा जाता है कि इसके द्वारा पतन नहीं होता और यह पतन से रक्षा करता है। इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण उप-लब्ध हैं जहाँ सन्तानों ने माता-पिता को गिरने से बचाया है।

(५) सन्तान='तनु-विस्तारे' धातु से 'सम्' उपसर्ग लगाने से 'सन्तान' शब्द सिद्ध होता है, अर्थात् जिसके द्वारा परिवार-कुल का अच्छी प्रकार से विस्तार हो सके।

उत्तम पुत्र के लक्षण

मनुष्यलोक में ऐसे माता-पिता धन्य हैं, जिन्हें ऐसी सन्तान प्राप्त हो। नीतिकार के निम्न वचन कितने सार्थक हैं—

विद्यावान् कीर्तिमान् वाग्मी सदाचारी महामतिः।
विधेयः सुभगः पुत्रो यस्य तेन जितं जगत्॥

विद्या, नीति, उत्तम वाणी, सदाचार, बुद्धि और ऐश्वर्ययुक्त जिसे सुपुत्र प्राप्त हो जाए, उसने मानो जगत् को जीत लिया। पर ऐसा पत्र सहज में नहीं मिलता है। किसे मिलता है—

पुण्यतीर्थे कृतयेन तपः क्वाप्यति दुष्करम्।
तस्यपुत्रो भवेत् वश्यः समृद्धो धार्मिकः सुधीः॥

किसी पुण्य-स्थान में जाकर जिसने कठोर तप किया हो, उसे ही आज्ञापालक, समृद्ध और बुद्धि-मान् पुत्र प्राप्त होता है। ऐसे मनुष्य को सुख की प्राप्ति क्यों न होगी?

पितर के गुण

याज्ञवल्क्य ऋषि ने दूसरे पितृलोक के विजय का साधन 'कर्म' कहा है। पहले 'पितर' शब्द का अर्थ समझना होगा। शास्त्रों में पाँच पितर बताये गये हैं:—

जनिता चोपनेता च यश्च विद्यां प्रयच्छति।
अन्नदाता भयत्राता पञ्चैते पितरः स्मृताः॥

उत्पन्न करने वाला, यज्ञोपवीत देने वाला, विद्या पढ़ाने वाला, अन्न देने वाला, और भय से बचाने वाला—ये पाँच पितर कहे जाते हैं। ये पाँचों पितर अगर कर्मशील न हों, इनका जीवन श्रेष्ठ मार्ग पर चलने वाला न हो तो इन्हें पितर बनने का अधिकार नहीं मिल सकता। पितरों में क्या गुण होने चाहिएं, नीतिकार कहते हैं—

सत्यं तपो ज्ञानमहिंसता च
विद्वत्प्रणामं च सुशीलता च।
एतानि यो धारयते स पितरः
न केवलं यः पठति स पितरः॥

यह छः गुण युक्त व्यक्ति ही पितर बन सकता है, केवल पढ़ लेने मात्र से नहीं। सत्य, तपोमय जीवन, ज्ञानप्राप्ति, अहिंसामय व्यवहार, विद्वानों के प्रति विनम्रता की भावना और स्वभाव में सुशीलता होना, इन गुणों से युक्त व्यक्ति ही समाज में 'पितर' की पदवी को प्राप्त कर आदर-सम्मान और यश का पात्र बनता है।

पितर राष्ट्र की परम्पराओं के रक्षक

'पितर' शब्द का एक दूसरा अर्थ भी है।

'पितर' या 'पिता' पालने धातु से बनता है, जो उत्तम और लाभकारी परम्पराओं की रक्षा करने वाला हो। समाज और राष्ट्र के कल्याण के लिए महापुरुषों द्वारा संस्थापित जो विधियाँ, तरीके व कुल-क्रमानुगत सन्मार्ग-प्रेरक परम्पराएं हैं उनका पालन अवश्य होना चाहिए। 'पितर' इन परम्पराओं के पालक और निर्देशक दोनों होते हैं। गीता के पहले अध्याय में अर्जुन ने युद्ध करने से इन्कार करते हुए अपने पक्ष में जो युक्तियां दी हैं, उनमें एक बड़ी प्रबल दलील यह भी है कि लड़ाई से कुल परम्पराएं नष्ट हो जाती हैं जिससे अधर्म और व्यभिचार फैल जाते हैं।

इन पितरों का सम्मान करने के लिये ही लोक-

है। "देव: दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतसोद्वा द्युस्थाने भवतीतिवा।" देव वही है जिसमें प्रकाश और दान—दोनों भावनाओं का पूर्ण समावेश हो। देव कैसे हों इसका उत्तर ऋग्वेद के ७।३५।११ के मन्त्र में दिया गया है—

शन्नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शंसरस्वती सहधी भिरन्तु। शमभिषा च: शमुरातिषा च: शनो दिव्या: पार्थिवा: शंनो अप्या:।

देव (विश्वदेव) ईश्वर के समान विश्व का कल्याण चाहने वाले बुद्धियुक्त ज्ञानमय होते हैं। (अभिषाच:) और (रातिषाच:) दोनों की धातु एक ही हैं—षच्-सेवायाम् 'अभि' और 'राति' उपसर्ग हैं। (अभिषाच:) जो सब ओर से सहयोग देने वाले हों और (रातिषाच:) शुभचिन्तक व उत्साहवर्धक हों।

विद्या और अविद्या

'विद्या' का क्या अर्थ है? 'अविद्या' का अर्थ समझ लेने से 'विद्या' का अर्थ अधिक स्पष्ट हो जाएगा। वैशेषिक दर्शन के ९।२।१० सूत्र में अविद्या के दो कारण बताये गये हैं—

इन्द्रिय दोषात् संस्कार दोषाच्चाविद्या—इन्द्रियों के दोष और संस्कारों के दोष से अविद्या का प्रादुर्भाव होता है। वैशेषिक दर्शन में अविद्या का लक्षण—

"तद् दुष्ट ज्ञानम्"

विरुद्ध ज्ञान का नाम अविद्या है। और विद्या—

"अदुष्टं विद्या"

दोषरहित ज्ञान अर्थात् यथार्थ ज्ञान (Exact Knowledge) का नाम विद्या है। इस विद्या की प्राप्ति कणाद मुनि के शब्दों में —

आर्य सिद्ध दर्शन च धर्मेभ्य:

ऋषि-मुनियों के सत्संग और धर्माचरण द्वारा विद्याप्राप्ति में सहायता प्राप्त होती है।

सन्तान के लिए वसीयत

इस उपदेश का समापन करते हुए याज्ञवल्क्य कहते हैं कि मनुष्य पितर, और देव—जिस समय अपने शरीर को छोड़े, उस समय अपनी सन्तान के लिए यह वसीयतनामा करे—

[शेष पृष्ठ १० पर]

त्वं ब्रह्म, त्वं यज्ञः, त्वं लोकः ।

हे सन्तान ! तुम महान् हो, तुम यज्ञमय हो और तुम यशस्वी हो।

संसार से विदा होने वाले मनुष्य, पितर और देव के प्रति सन्तान नम्रता से कहे—

अहं ब्रह्म, अहं यज्ञः, अहं लोकः ।

भगवन् ! आपकी आशाओं और आकांक्षाओं को पूर्ण करने के लिए सतत प्रयत्नशील होते हुए मैं महान् बनूंगा, मेरा जीवन यज्ञमय होगा और मैं यशस्वी बनूंगा ।

याज्ञवल्क्य ने जीवन का सारयुक्त बड़ा व्यवस्थित और प्रेरणाप्रद कार्यक्रम हमें दिया है। इसका यदि पूर्णतः पालन किया जाए तो जहाँ सुख, शान्ति और आनन्द की प्राप्ति होगी वहाँ समृद्धि और सफलता भी अवश्य उपलब्ध होगी। राष्ट्र की कौन-सी समस्या है, जिसका हल उपनिषद् की इस शिक्षा में निहित नहीं है। गृहस्थ में रहते हुए ही इन तीनों स्थितियों की उपलब्धि हो सकती है। ●●

———

हमारे जैसा ही दिक्खे है !

बात कुछ साल पूर्व की है। श्री मन्त्री श्री नेहरू उन दिनों उत्तर प्रदेश के गांवों का दौरा कर रहे थे। जिस गांव में वे पहुँचने वाले होते, वहां उनके आने की खबर लगते ही सारे ग्रामवासी सड़क के पास आकर खड़े हो जाते कि कब जवाहरलाल जी आयें और हम लोग देखें। ऐसे ही गांव के लोग एक बार सुबह से ही रास्ते पर खड़े होकर श्री नेहरू की मोटर का इन्तजार कर रहे थे। सभा का समय सुबह ८ बजे था, पर ९ बज जाने पर भी नेहरू का पता न था। आखिर १० बजे वे आये; मालूम पड़ा कि उनकी मोटर रास्ते में बिगड़ गयी थी।

गांव का बूढ़ा चौधरी श्री नेहरू को देखने के लिये बड़ा उत्सुक था। मोटर के आते ही वह लपक कर आगे पहुँचा और उसने अपनी उत्सुक नजरें जवाहरलाल जी पर डालीं—चूड़ीदार पैजामा, कुरता और बण्डी। चौधरी तो जैसे अपनी आंखों पर विश्वास नहीं कर सका। कुछ देर एकटक देखने के बाद उसने आंख हटा ली और बड़े ही निराश स्वर में यह कहता हुआ वहां से पीछे हट गया "यही नेहरू जी हैं क्या ? अरे यह आदमी तो हमारे जैसा ही दिक्खे है !" ●

बताये गये हैं:—

जनिता चोपनेता च यश्च विद्यां प्रयच्छति ।
अन्नदाता भयत्राता पञ्चैते पितरः स्मृताः ।।

उत्पन्न करने वाला, यज्ञोपवीत देने वाला, विद्या पढ़ाने वाला, अन्न देने वाला, और भय से बचाने वाला—ये पाँच पितर कहे जाते हैं। ये पाँचों पितर अगर कर्मशील न हों, इनका जीवन श्रेष्ठ मार्ग पर चलने वाला न हो तो इन्हें पितर बनने का अधिकार नहीं मिल सकता। पितरों में क्या गुण होने चाहिएं, नीतिकार कहते हैं—

सत्यं तपो ज्ञानमहिंसता च
विद्वत्प्रणामं च सुशीलता च ।
एतानि यो धारयते स पितरः
न केवलं यः पठति स पितरः ।।

यह छः गुण युक्त व्यक्ति ही पितर बन सकता है केवल पद लेने मात्र से नहीं। सत्य, तपोमय,

—✻✻—

मुद्रक, प्रकाशक, विजयकुमार ने सम्पादित कर बदलिया प्रिंटिंग प्रेस, दाईवाड़ा दिल्ली में मुद्रित कर वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली से प्रकाशित किया।

॥ ओ३म् ॥



❀ ओ३म् ❀

वे द प्र का श

वर्ष १८ | संस्थापक—गोविन्दराम हासानन्द | वार्षिक मूल्य
अङ्क ७ | माघ २०२६, फरवरी १९७० | ३-००

सम्पादक : विजयकुमार | आदरी सम्पादक : ब्र० जगदीश विद्यार्थी

वेद प्रवचन

★ स्व० गंगाप्रसाद उपाध्याय

मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत् स तस्य ।
नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी ॥
(ऋग्वेद १०-११७-६, तैत्तिरीय ब्राह्मण २८-८-३, निरुक्त ७ । ३)

अन्वय : अप्रचेताः मोघं अन्नं विन्दते । स तस्य वध इत् । स आर्यमणं न पुष्यति । न स सखायं पुष्यति । केवलादी केवलाघः भवति । इति अहं सत्यं ब्रवीमि ॥

अर्थ : (अप्रचेताः) बुद्धि-शून्य अर्थात् मूर्ख आदमी (मोघं अन्नं) मुफ्त का भोजन, बिना कमाया हुआ भोजन (विन्दते) पाने का यत्न करता है। अर्थात् अपने भोजन के लिये कुछ करना नहीं चाहता। (स) उसका ऐसा व्यापार (तस्य) उसके (वध इत्) नाश का ही कारण है। (केवलादी) जो अकेला खाने वाला है वह (केवलाघः) केवल पाप का भागी (भवति) होता है। (सत्यं ब्रवीमि) मैं सत्य कहता हूँ। अर्थात् इस कथन के सच होने में किंचिन्मात्र भी सन्देह नहीं है।

व्याख्या—मनुष्य-जीवन के दो बड़े विभाग हैं। एक भोग और दूसरा कर्म। प्रश्न यह है कि इन दोनों का महत्त्व समान है अथवा एक गौण है और दूसरा मुख्य। यदि ऐसा है तो मुख्य कौन है और गौण कौन ? तुलसीदास का कहना है कि—

कर्म प्रधान विश्व करि राखा ।
जो जस करै सो तस फल चाखा ॥

अर्थात् कर्म प्रधान है और भोग गौण। अब तनिक अपनी प्रवृत्तियों पर भी विचार कीजिये। आपका मन क्या गवाही देता है ? आपने एक घोड़ा मोल लिया। उससे कुछ काम लेंगे और कुछ उसे भोजन देंगे। उसे कुछ करना है और कुछ भोगना है। आपको सवारी देना उसका कर्म है, दाना-घास खाना उसका भोग है। उन दोनों में से मुख्य कौन है और गौण कौन ? आप चूंकि भोजन देते हैं इसलिये काम लेते हैं, अथवा काम लेते हैं इसलिए भोजन देते हैं। आपकी प्रथम भावना क्या थी और दूसरी भावना क्या हुई ? आप कहेंगे कि हमको घोड़े से काम लेना था, इसलिये हमको उसके खरीदने की इच्छा हुई ; और चूंकि बिना भोजन दिये काम लेना असम्भव है अतः उसको भोजन भी देते हैं। यदि बिना भोजन दिये आप काम ले सकते तो केवल

उसके काम को ही परवाह करते, उसके खाने की नहीं। जो बेगार में काम कराते हैं वे जानते हैं कि बेगार वाला बिना भोजन के भी काम करने पर मजबूर होगा। इसलिये वह भोजन की परवाह नहीं करते। अत: सिद्ध हुआ कि कर्म मुख्य है और भोग गौण। आवश्यक होते हुए भी उसकी आवश्यकता को प्रथमता नहीं दी जा सकती।

इस सिद्धान्त के विरुद्ध एक बात कही जा सकती है। प्राय: संसार में लोग भोग के लिए ही कर्म करते हैं। यदि भाग को आशा नहीं होती तो नहीं करते। एक चिकित्सक इसलिये चिकित्सा नहीं करता कि उसे चिकित्सा का ज्ञान या सामर्थ्य है, अपितु इसलिये कि उससे आर्थिक लाभ होगा। एक वकील इसलिये वकालत नहीं करता कि वह वकालत के काम में दक्ष है, अपितु इसलिये कि उसे पैसा मिलता है। इसलिये लोगों ने अर्थ को ही सर्वोपरि माना है। "सर्वे गुणा: काञ्चनमाश्रयन्ति।" कांचन का अर्थ है भोग।

यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिक प्लटो (अफलातून) ने अपने ग्रन्थ 'रिपब्लिक' (शासन-तंत्र) में इस प्रश्न पर अच्छा प्रकाश डाला है। वह कहता है कि क्या एक अध्यापक इसलिये अध्यापक कहलाता है कि वह अध्यापन का कार्य करता है अथवा इसलिए कि वह अमुक वेतन पाता है। एक डाक्टर को आप इसलिए डाक्टर कहते हैं कि वह डाक्टरी करता है अथवा इसलिये कि वह इतना धन कमाता है। एक सैनिक का सैनिक नाम उसके कर्म के कारण हुआ अथवा उसके वेतन के कारण। यह तो ठीक है कि अध्यापक, वकील, सैनिक या डाक्टर सब जीविका-उपार्जन करते हैं और जीविका के लिये ही काम करते हैं। परन्तु यह बात तो सभी में सामान्य है। और यदि जीविका-उपार्जन को ही मुख्य माना जाय तो सब एक-से होंगे, विशेषता न होगी, तथा हरएक का सम्मान उसकी आर्थिक मात्रा के अनुसार होना चाहिये। परन्तु समाज का ऐसा नियम तो नहीं है। एक रोगी मनुष्य डाक्टर को खोज करता है तो उसकी धनाढ्यता को न देखकर उसकी डाक्टरी की योग्यता को देखता है। ऐसे डाक्टर को बुलाऊँ जो डाक्टरी अच्छी कर सके। यह प्रवृत्ति तुलसीदास के ऊपर के कथन को पुष्ट करती है कि न केवल 'विश्व' नामक परमात्मा ने ही, अपितु विश्व-मानव-समाज ने कर्म को भोग पर प्रधानता दी है।

जब इतना निश्चित हो गया तो भोग को कर्म के आधीन रखना होगा ; कर्म को भोग के आधीन नहीं। कर्म आधार है, भोग आधेय है। आधेय बिना आधार के ठहर नहीं सकता। इसलिये वेदमंत्र कहता है "मोघं अन्नं विन्दते अप्रचेता:" अर्थात् मुफ्त का खाने की इच्छा करने वाला मूर्ख है। वह भोग को प्रथमता देता है। यह बात सृष्टि के नियम के विरुद्ध है। जिस अंधेरनगरी में टका सेर भाजी और टका सेर खाजा बिकता था वह नगरी पूरी अंधेरनगरी न थी। कुछ तो उजाला भी था। पूरी अंधेरनगरी वह होती जहाँ खाजा और भाजी मुफ्त मिला करती, और टका कमाने की भी आवश्यकता न पड़ती। डाक्टर डाक्टरी सीखता भी इसीलिये है कि उसे पूर्ण विश्वास है कि जिस भोग की उसे आकांक्षा है सृष्टिक्रम उसको कर्म पर प्रधानता नहीं देता। मूल्य तो उसी चीज़ का दिया जाता है जो मूल्यवान् हो। कपड़ा अपने मूल्य से बड़ा है। मूल्य का मूल्य भी कपड़े की अपेक्षा से है, न कि मूल्य की अपेक्षा से ; इसलिये कर्म की प्रधानता है और कर्म की अवहेलना अथवा बिना कर्म के भोजन की इच्छा करना परले दर्जे की मूर्खता है। जिस पुरुष को थोड़ी-सी भी बुद्धि है वह ऐसी मूर्खता कभी नहीं करेगा। संसार को काम प्यारा है, चाम नहीं।

वेदमंत्र कहता है "सत्यं ब्रवीमि" इसका तात्पर्य यह है कि यह कोई छोटी बात नहीं है, जिसको सुनी-अनसुनी कर दिया जाय। मानव-जीवन के विकास के लिये यह एक अत्यन्त गंभीर बात है। मुफ्त भोजन खाने की इच्छा विश्वव्यापी और संक्रामक रोग है जिसने मानव-जाति को सबसे अधिक पीड़ित किया है। हर नर-नारी को इससे

सतर्क रहने की आवश्यकता है। यह मीठा विष है जिसकी हानि को बुद्धिमान् मनुष्य ही सोच सकते हैं। "वध इत् स तस्य" जो इस रोग में फँस गया उसकी मृत्यु अवश्यम्भावी है। वह किसी प्रकार बच नहीं सकता।

इस कथन की तथ्यता पर थोड़ा-सा विचार कीजिये। मुफ्त खाकर अपने ऊपर परीक्षण कर लीजिये अथवा दूसरे मुफ्तखोरों के जीवन का निरीक्षण कीजिये। कुदरत को यह अभीष्ट नहीं कि मुफ्तखोरों को रहने दे। थोड़ी देर के लिए सह्य अवश्य करती है; वह भी उतना ही जितना हर पाप को। वह मनुष्य को अवसर देती है कि यदि वह स्वयं ही अपनी भूल का अनुभव करे और सुधर जाय तो अच्छा है। परन्तु इसमें दण्डविधान तो काम करता ही है। माता-पिता अपनी सन्तान की निर्बलताओं को यथाशक्ति तथा अत्यन्त सहिष्णुता के साथ सहन करते हैं और बड़ी-से-बड़ी भूलों की उपेक्षा करते हैं। परन्तु निठल्ली सन्तान से वे भी तंग आ जाते हैं और उनका भी स्वाभाविक प्रेम-तन्तु टूट जाता है, इसलिये मुफ्तखोरी से बड़ा कोई पाप नहीं और सर्वथा नाश ही उस पाप का एकमात्र दण्ड या प्रायश्चित्त है। इसीलिये वेदमंत्र ने कहा—"वध इत् स तस्य"। यहाँ 'इत्' का विशेष अर्थ है। मनुष्य की स्वार्थ-सिद्धि भी तभी होती है जब वह दूसरों के हित की बात सोचता है। व्यवसाय-जगत् पर दृष्टि डालिये। कोई व्यवसाय चल नहीं पाता जब तक उसका आधार परार्थ न हो। कपड़े का व्यापारी दूसरों के हित को दृष्टि में रखकर कपड़े बनाता है। हलवाई दूसरों की रुचि को देखकर मिठाइयाँ बनाता है। आप जितना परहित को दृष्टि में रखकर व्यापार करेंगे उसमें उतनी ही अधिक सफलता होगी। हर व्यवसाय के लिए प्रश्न रहता है कि उसके साफल्य के लिये बाजार (मार्केट market) चाहिये। 'बाजार' का क्या अर्थ? यही न कि जिस वस्तु को आप अपने स्वार्थ का साधन बनाना चाहते हैं उसमें दूसरे मनुष्यों का कितना हित निहित है। इससे विदित होता है कि परोपकार आपका पहला कर्त्तव्य और ध्येय होना चाहिये।

परोपकार के दो रूप हैं। एक विनिमय अर्थात् जो आपके साथ जितनी भलाई करे उसका कम-से-कम उतना बदला तो तुम दे ही दो। दस रुपये की चीज पाकर उसको दस अवश्य दो। अर्थात् 'मोघ अन्न' की प्राप्ति मत करो। मत समझो कि चार रुपये में दस का माल मिल गया तो तुम लाभ में हो। यह मुफ्त के छः रुपये, जिसको तुम लाभ समझते हो, अन्त में तुम्हारे नाश का कारण सिद्ध होंगे। व्यवसाय में जिसको चालाकी और धोखा-धड़ी कहा जाता है, वह व्यवसाय की अवनति का कारण होता है। यदि सत्य के आधार पर समस्त जगत् की स्थिति है (सत्येनोत्तभिता भूमिः—ऋग्वेद १०-८५-१) तो व्यवसाय जो जगत् का ही एक छोटा-सा अंश है असत्य पर कैसे टिक सकता है? कहते हैं कि व्यापार की सफलता के लिए साख चाहिये। साख का अर्थ ही यह है कि लोगों को विश्वास हो कि तुम दस रुपये में पूरे दस का माल देते हो। भारतवर्ष के प्राचीन ग्रन्थों में तथा ऐतिहासिक और अर्ध-ऐतिहासिक उदाहरणों में सत्य की बड़ी महिमा गाई गई है, परन्तु दुर्भाग्यवश वह महिमा धर्म-ग्रन्थों और धर्म-उपदेशों तक ही सीमित है। व्यावहारिक जीवन में उसका प्रयोग बहुत कम है। मैं यहाँ एकही उदाहरण दूँगा। डर्बन में मुझे एक सुन्दर कम्बल दिया गया। उसमें फैक्टरी की ओर से एक चिट लगी थी, उसमें लिखा था कि इस कम्बल में साठ प्रतिशत ऊन है; शेष रूई है। यदि भारतीय फैक्टरी होती तो यह लिखा होता कि इसमें शत-प्रतिशत ऊन है। प्रसिद्धि है कि लन्दन का कुंजड़ा आपको स्पष्ट कह देगा कि अमुक सेब खट्टा है। क्या प्रयाग और काशी में भी ऐसे कुंजड़े मिलेंगे? सुना है कि इंग्लैण्ड आदि देशों में पानी में दूध मिलाकर बेचते हैं और स्पष्ट कहते हैं कि इतना दूध है और इतना पानी। क्योंकि पानी-मिला दूध पचाने के लिए हलका समझा जाता है। क्या

भारत में कोई हलवाई ऐसा करेगा ? क्या भारत के व्यवसायियों को यह बताने की आवश्यकता नहीं कि "मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः ।"

परोपकार का दूसरा रूप है दान। जब आप मूल्य का विनिमय करते हैं तो पूरा बदला नहीं दे पाते। पूरे दाम चुकाने पर भी कुछ-न-कुछ रह जाता है । मनुष्य स्थूल रूप से तो दूसरों के परोपकार पर जीवित रहता ही है, परन्तु बहुत-से परोक्ष, अदृष्ट और सूक्ष्म रूप हैं, जिनका परिगणन कठिन होता है । जैसे आप किसी अँधेरी सड़क पर जा रहे हैं। किसी पास के मकान से विद्युत्-दीपक की किरणें आ रही हैं। आप इसका मूल्य तो नहीं चुकाते, न मकान वाला आपसे विनिमय माँगता है, परन्तु आपको उससे लाभ अवश्य हुआ है। यहाँ दान का प्रश्न उठता है । यह परोक्ष लाभ भी मुफ्तखोरी होगी यदि आप दान नहीं देते । इसीलिये छान्दोग्य उपनिषद् में धर्म के तीन काण्डों का निरूपण करते समय पहले काण्ड में दान को भी शामिल किया है[1] । जो 'मोघ अन्न' के पाप से बचना चाहता है उसे दान देना चाहिये। क्योंकि आपके भोगों में दूसरों की देन है। इसका बदला दान से ही हो सकता है। आपका दान सृष्टि के सूक्ष्म नियमों द्वारा उन तक भी पहुँच जाता है जो आपसे अपने उपकारों का मूल्य नहीं माँगते। जो दान नहीं देता उसके लिये वेद कहता है कि वह 'न अर्यमणं पुष्यति न सखायं पुष्यति' अर्थात् वह अपने किसी हितैषी का पोषण नहीं करता। अर्यमा का अर्थ है परम स्नेही (Bosom friend, देखो मोनियर विलियम्स की संस्कृत डिक्शनरी)। 'सखा' का अर्थ है 'साथी' या 'हम-पेशा'—एक ही काम करने वाले।

अन्त में वेदमंत्र ने दान न देने वाले की घोर निन्दा की है। 'केवलाघो भवति केवलादी' जो अकेला खाता है उसके पास अन्त में 'पाप' के सिवाय कुछ शेष नहीं रहता। अर्थात् उसके समस्त पुण्य क्षीण हो जाते हैं। जब पुण्य क्षीण हो गये तो तो सुख किसका मिले ? पुण्य के क्षीण होते ही सुखों का भी क्षय हो जाता है।

अंग्रेजी की एक कहावत है—दान धन का नमक है (Charity is the salt of riches)। अंग्रेजी शब्द साल्ट का अर्थ है नमक। नमक का अर्थ है फलों को सुरक्षित रखने का साधन। जैसे यदि आप नीबू या आम को कई महीनों सुरक्षित रखना चाहें तो उसमें नमक मिलाकर अचार बना लो। नीबू या आम बिगड़ेगा नहीं। इसी प्रकार यदि आप अपने धन की रक्षा करना चाहते हैं तो दान देते रहिये। दान से धन घटता नहीं, बढ़ता है। दान उभयपक्षी हित है। हमसे दान पाने वाले का तो हित होता ही है, दान देने वाले का उससे कम हित नहीं होता। इसलिये यास्काचार्य ने दान देने वाले की 'देव' संज्ञा की है ('देवो दानाद् वा') दान दाता देव है। जो दान नहीं देता वह अदेव या असुर है, 'केवलाघः' है। स्वामी दयानन्द ने 'सत्यार्थ-प्रकाश' के तीसरे समुल्लास में तैत्तिरीय-उपनिषद् का दान की महिमा में एक सुन्दर उद्धरण दिया है—

१. त्रयो धर्मस्कन्धाः यज्ञोऽध्ययनं दानमिति प्रथमः ततः एव । द्वितीयः ब्रह्मचार्य्याचार्यकुलवासी । तृतीयः अत्यन्तमात्मानमाचार्यकुलेऽवसादयन् । सर्व एते पुण्यलोका भवन्ति ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्त्वमेति ।

(छान्दोग्य-उपनिषद् प्रपाठक २, खण्ड २३—प्रवाक १)

अर्थ—धर्म के स्कन्ध या भाग मुख्य तीन हैं—यज्ञ, अध्ययन और दान। ये तीनों मिलकर धर्म का एक स्कन्ध है। तपस्या ही धर्म का दूसरा स्कन्ध है। अपने शरीर को अतिशय सत्य, अध्ययन, मौन, ज्ञानादि विविध नियमों से क्लेशित करता हुआ आचार्य-कुलवासी ब्रह्मचारी आचार्यकुल में जो निवास करता है वही धर्म का तीसरा स्कन्ध है। यह सब आश्रमी पुण्य-लोक वाले होते हैं। परन्तु इन आश्रमियों में जो ब्रह्मनिष्ठ होता है वह मुक्ति को पाता है।

(देखो छान्दोग्योपनिषद् भाष्य—शिवशंकर काव्यतीर्थ कृत)।

"श्रद्धया देयम् । अश्रद्धया देयम्[1] । श्रिया देयम् । ह्रिया देयम् । भिया देयम् । संविदा देयम् ।" श्री स्वामीजी इसका अर्थ देते हैं 'श्रद्धा से देना, अश्रद्धा से देना, शोभा से देना, लज्जा से देना, भय से देना और प्रतिज्ञा से भी देना चाहिये ।' (तैत्तिरीय प्रपाठक ७, अनुवाक ११, सत्यार्थ प्रकाश समु० ३)

अश्रद्धा और लज्जा से भी देने पर क्यों बल दिया गया ? इसका तात्पर्य यह है कि कभी-कभी सात्विक भावनाओं की कमी होने पर यदि मनुष्य किसी पाप की प्रवृत्ति में फँसने लगता है तो समाज का भय उसे दलदल में फिसलने से बचा लेता है । और कालान्तर में उसकी सतोगुणी प्रवृत्ति लौट आती है । डूबते को तिनके का सहारा । अश्रद्धा से देते-देते भी श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है । अश्रद्धा और लज्जा से दिया हुआ दान भी दूसरों के उपकार में लगता ही है ।

अथर्ववेद में अतिथि-सत्कार के सम्बन्ध में बहुत अच्छा उपदेश है जो 'केवलादी' के दोष का निरूपण करता है :—

'इष्टं च वा एष पूर्तं च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति ।' (अथर्ववेद ९—६ (३)—१)

अर्थात् जो गृहस्थ अतिथि को बिना पहले खिलाये स्वयं खा लेता है वह घरों की श्री को खा जाता है अर्थात् नाश कर देता है ।

अर्थात् गृह की शोभा इसी में है कि हम अकेले न खायें ।



[शेष पृष्ठ ८ का]

जिसमें आर्य विद्वानों के अतिरिक्त सार्वजनिक संस्थाओं के विशिष्ट अतिथियों के आवास की व्यवस्था रहेगी, तथा विशेष धार्मिक-गोष्ठियाँ एवं वेद-कथाएँ आदि हुआ करेंगी । वे २० हज़ार रुपये की राशि का एक स्थायी कोष बना गए हैं जिसके व्याज के अर्ध भाग से पण्डितजी की रचनाओं का प्रकाशन तथा शेष से आर्यसमाज का प्रचार अबाध गति से चलता रहेगा ।

वस्तुत: पं० राजेन्द्र जैसे सुयोग्य, उत्साही तथा निस्पृह आर्य विद्वान् तथा समाजसेवी की रिक्तता की पूर्ति कठिनाई से ही हो सकेगी । उनका जीवन धर्म और समाज के प्रति समर्पित था—आर्यसमाज के लिए ही वे जीये और उसी की सेवा करते-करते उनकी इहलीला समाप्त हुई ।

ईश्वर से प्रार्थना है कि वह दिवंगत आत्मा को सद्गति तथा शोकाकुल परिवार को शक्ति प्रदान करे !

१. कुछ आधुनिक भाष्यकारों ने 'अश्रद्धा देयम्' को विकृत करके "अश्रद्धयाऽदेयम्" (अश्रद्धया अदेयम्) ऐसा कर दिया है। यह पाठ "अकः सवर्णे दीर्घः" सूत्र के विरुद्ध नहीं जाता परन्तु प्रकरण के सर्वथा विरुद्ध है। ह्रिया, लज्जया के साथ भी ऐसा ही करना पड़ेगा और दान की जो आवश्यकता वर्णन की गई है वह जाती रहेगी। ऋषि दयानन्द का किया अर्थ ही समुचित है।

———

पं० राजेन्द्र आर्य : एक समर्पित जीवन

★ पं० प्रसादीलाल शर्मा 'चूड़ामणि'

आर्य जगत् में यह समाचार बड़े शोक से सुना जायेगा कि अतरौली आर्यसमाज के प्रधान श्री पं० राजेन्द्र जी का एक लम्बी अस्वस्थता के पश्चात् दि० १-१२-६९ को स्वर्गवास हो गया। पण्डित जी वैदिक धर्म के अनन्य सेवक, योग्य विद्वान्, ओजस्वी लेखक, विचारक एवं निपुण कलाकार थे। 'भारत में मूर्तिपूजा', 'गीता की पृष्ठभूमि', 'गीता विमर्श', 'सनातन धर्म', 'आर्य-संस्कृति के तीन प्रतीक', 'सर्व-धर्मसमन्वय', 'नमस्ते बनाम नमस्कार', 'पूर्वजन्म स्मृति', 'ऋषि दयानन्द और गीता', 'श्रीकृष्ण-रासलीला', 'तीन महापातक', 'हरिनाम-संकीर्तन', 'नमस्ते ही क्यों ?', 'आर्यसमाज का नव-निर्माण', 'शुद्ध गीता' तथा 'शंकर मायावाद' आदि १६ मौलिक ग्रन्थों के रचयिता तथा महर्षि दयानन्द के कई वास्तविक चित्रों के निर्माता थे।

उनका जन्म अतरौली के एक संभ्रान्त ब्राह्मण-परिवार में स्वर्गीय श्री पं० मथुराप्रसाद नगाइच के गृह में अगहन शुक्ला ४ सं० १९५३ में हुआ था। कुछ ही वर्ष की आयु में उनके ताऊ श्री पं० गंगा-प्रसाद नगाइच ने उनको दत्तकपुत्र के रूप में ग्रहण कर लिया था। १६-१७ वर्ष की अवस्था में जब वे आगरा में विद्याध्ययन कर रहे थे, वे आर्यसमाज के सम्पर्क में आए और उसी समय से महर्षि दयानंद के पूर्ण अनुयायी और सच्चे भक्त बन गये। अपनी युवावस्था में वे अतरौली में रहकर स्थानीय आर्य-समाज की विशेष उन्नति में संलग्न हुए। यहाँ अपने कार्य-कौशल तथा विशेष अध्यवसाय से उन्होंने उसकी काया पलटने में विशेष योगदान किया और स्वयं विशेष दान देकर तथा अपने संबंधी एवं जनता से धन एकत्रित कर 'वेद मंदिर' नामक भव्य भवन की स्थापना की, जिसमें स्थानीय आर्यसमाज के दैनिक-साप्ताहिक सत्संग, आर्य-गोष्ठियाँ, वेद-कथाएँ तथा वार्षिकोत्सव बड़ी सफलतापूर्वक होते रहते हैं। वर्षों तक वे आर्यसमाज तथा वेद-मंदिर अतरौली के प्रधान रहे। पण्डितजी बड़े कर्मनिष्ठ एवं आस्तिक पुरुष थे। दोनों समय सन्ध्या तथा अग्निहोत्र का क्रम उनके निधनपर्यन्त प्रायः अविचल रूप से चलता रहा। आर्य विचारों के दृढ़ व्रती होने के कारण वे सिद्धान्तों में किसी से भी समझौता करना नहीं जानते थे। अतरौली के सामाजिक जीवन में उनका विशेष स्थान था। वे नगरपालिका के सदस्य और कुछ समय तक उपाध्यक्ष एवं कार्यवाहक अध्यक्ष रहे। स्थानीय इंटर कालिज और उच्चतर माध्यमिक कन्या विद्यालय के साथ उनका निकट सम्बन्ध था—और दोनों के प्रबन्धक-पद पर उन्होंने अनेक वर्षों तक कार्य किया। अलीगढ़ ज़िला बोर्ड की शिक्षा-समिति तथा प्रान्तीय आर्य-प्रतिनिधि-सभा के सदस्य भी वे कई वर्षों तक रहे।

पण्डितजी की अन्त्येष्टि उनके सिद्धान्तों के अनुसार अतरौली की श्मशान भूमि में घृत, चन्दन और सामग्री के साथ पूर्ण वैदिक रीति द्वारा सम्पन्न हुई। उनकी शव-यात्रा में अनेक संभ्रान्त नागरिक और विद्वान् उपस्थित थे।

पण्डितजी अपने एकमात्र सुयोग्य पुत्र डॉ० नगेन्द्र (आचार्य एवम् अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय) के परामर्श से अपनी चल एवं अचल संपत्ति का विशेष भाग आर्यसमाज की सेवा में समर्पित कर गए हैं। 'आर्य-निवास' नामक भवन के लगभग ५० हज़ार रुपये के मूल्य के एक सुन्दर तथा विस्तृत खण्ड को उनके पुत्र ने अपनी पिता की स्मृति में 'राजेन्द्र-अतिथि-गृह' का रूप दे दिया है

[शेष पृष्ठ ७ पर]

साहित्य समालोचना

'सरस्वती' हिन्दी के गिने-चुने उच्चकोटि के पत्रों में से एक है। इसके लेख गाम्भीर्यपूर्ण होते हैं। लेखक भी उच्चकोटि के होते हैं। पत्र में जो कुछ छपता है, उसका मूल्य होता है। इस पत्र में प्रकाशित हमारी एक पुस्तक की समालोचना पठनीय है।

बृहदारण्यक उपनिषद् कथामाला—लेखक स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक, प्रकाशक गोविन्दराम हासानन्द, आर्य साहित्य भवन, नई सड़क, दिल्ली। पृष्ठ-संख्या २३६। मूल्य ३ रुपये।

बृहदारण्यक उपनिषद्, जैसा इसका नाम है, एक बृहद् ग्रन्थ है। टीका के साथ तो यह ग्रन्थ बहुत ही बड़ा हो जाता है। सबसे पहले तो स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक की इस उपनिषद् की टीका इस कारण ही ध्यान आकृष्ट करती है कि इस तरह २३६ पृष्ठों के छोटे-से आकार में इतनी बृहद् पुस्तक समा कैसे गई ? प्राक्कथन में स्वामीजी ने स्वीकार किया है कि जिन कथाओं की पुनरुक्ति हुई है और जो भाग अत्यन्त रूखे हैं, उनको स्वामीजी ने नहीं उठाया है। इस कारण यह नहीं कहा जा सकता कि यह पूर्ण बृहदारण्यक उपनिषद् की व्याख्या है। साथ ही यह भी नहीं कहा जा सकता कि यह उपनिषद्-व्याख्या अधूरी है, क्योंकि जिस प्रकार व्याख्या के अंगों का चयन किया गया है उसमें भी उपनिषद् की कोई महत्त्वपूर्ण बात छूटी नहीं है। वास्तव में यह पुस्तक व्याख्या रूप में नहीं लिखी गयी है, यह पुस्तक प्रवचनों को लेखबन्द करके छपाई गई है।

यह टीका उपनिषदों पर की गयी आम टीकाओं से बहुत भिन्न है। इसमें उपनिषद्-वाक्यों के मूल अर्थों को बहुत स्पष्ट रूप से खोल दिया गया है—अर्थ पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है, उपनिषद्-भाव को समझना अत्यन्त सरल हो जाता है। पृथ्वी की उत्पत्ति के पूर्व की अवस्था, पृथ्वी की उत्पत्ति, उसकी संहार-शक्ति में धीरे-धीरे जीवन का स्पन्दन, सभी कुछ इतनी स्पष्टता के साथ दिया गया है कि वह दुरूहता और गोपनीयता, जो कि उपनिषदों का एक गुण ही मान लिये गये हैं, पूर्णतः लुप्त हो जाती है और उसके भाव इस प्रकार स्पष्ट हो जाते हैं जैसे कोई आधुनिक वैज्ञानिक पुस्तक हो। इसका मुख्य कारण तो स्वामीजी का स्वयं का मनन और मन्थन है, और दूसरा कारण है उन वाक्य-विन्यासों को स्पष्ट करना जो आध्यात्मिक साहित्य के एक अंग बन गये हैं और टीकाओं में वैसे-के-वैसे उतार दिये जाते हैं। आम पाठक को उनका अर्थ कुछ भी पल्ले नहीं पड़ता और इस कारण निरन्तर पाठ करने के पश्चात् भी उसकी कोई मानसिक अभिवृद्धि नहीं होती।

(इस पुस्तक के) पठन के पश्चात् पाठकों के हाथ कुछ लगता है। पुस्तक में उपनिषद् का मूल भी दिया गया है, उसके नीचे अर्थ है, फिर टिप्पणी।

(सरस्वती मासिक जनवरी १९७० से उद्धृत)



हमारी प्रकाशित प्रसारित पुस्तकें

महात्मा आनन्द स्वामी कृत

तत्त्वज्ञान	३-००
प्रभुदर्शन	२-५०
प्रभुभक्ति	१-५०
आनन्द गायत्री कथा	०-७५
एक ही रास्ता	१-००
शंकर और दयानन्द	०-७५
सत्यनारायण व्रत कथा	०-७५
भक्त और भगवान्	१-००
मानव जीवन गाथा	१-००
उपनिषदों का सन्देश	१-५०
घोर घने जङ्गल में	२-५०
महामन्त्र	१-२५
सुखी गृहस्थ	१-००
बोध कथाएं	३-५०
मानव और मानवता	४-५०

प्रो० नित्यानन्द वेदालंकार कृत

पूर्व और पश्चिम	७-५०
जीवन की राहें	४-००
प्रार्थना दीप	२-००
सन्ध्या विनय	१-५०
सु-राज्य की रूपरेखा	०-५०

ब्र० जगदीश विद्यार्थी कृत

दयानन्द सूक्ति और सुभाषित	४-००
विद्यार्थी लेखावली	३-००
वैदिक प्रश्नोत्तरी	२-००
वेद सौरभ	२-००
वैदिक उदात्त भावनाएँ	२-००
ईशोपनिषद्	२-००
कुछ करो कुछ बनो	२-००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	१-५०
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	१-५०
दिव्य दयानन्द	१-२५
प्रार्थना प्रकाश	१-२५
प्रभात वन्दन	१-२५
हास्य विनोद	१-००
विष्णु पुराण की आलोचना	०-४०
ऋग्वेद शतकम्	१-००
अथर्ववेद शतकम्	१-००
यजुर्वेद शतकम्	१-००
सामवेद शतकम्	१-००

पं० भगवद्दत्त कृत

भारतीय संस्कृति का इतिहास	६-००
आर्य राजनीति के मूल तत्त्व	०-३०

महर्षि दयानन्द कृत

उपदेश मजरी	२-५०
आत्मकथा	०-४०
स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश	०-१०
वेदान्तिध्वान्त निवारण	०-२०
वेदविरुद्ध मत खण्डन	०-३७
शिक्षापत्रीध्वान्तनिवारण	०-३७
आर्याभिविनय	०-७५
आर्योद्देश्यरत्नमाला	०-१५
ऋग्वेद भाष्य का प्रथम सूक्त	०-२५
भ्रान्ति निवारण	०-३७
व्यवहारभानु	०-३०
भ्रमोच्छेदन	०-२५
गोकरुणानिधि	०-२०
गृहस्थाश्रम	०-६२
काशी शास्त्रार्थ	०-२०
सत्यधर्म विचार	०-२५
आर्यसमाज के नियमोपनियम	०-१०
ईशोपनिषद्	०-२५
बालशिक्षक	०-३७

पं० रामचन्द्र देहलवी कृत

देहलवी लेखावली	३-५०
ईश्वर ने दुनिया क्यों बनाई ?	०-४०

महात्मा नारायण स्वामी कृत

आर्य समाज क्या है	०-७५
वैदिक यज्ञ रहस्य	०-३७

पं० आर्य मुनि कृत

ईश-उपनिषद्	०-४०
केन-उपनिषद्	०-५०
माण्डूक्य ,,	०-३१
ऐतरेय उपनिषद्	०-५०
तैत्तिरीय ,,	१-२५

प्रो० सुरेशचन्द्र वेदालंकार कृत

मन की अपार शक्ति	१-२५
आकर्षक व्यक्तित्व कैसे बने ?	१-५०

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय कृत

विवाह और विवाहित जीवन	२-५०

पं० रामगोपाल विद्यालंकार

दयानन्द चित्रावली	२-५०

स्वामी ब्रह्ममुनि कृत

बृहदारण्यक उपनिषद् कथा	३-००

पं० भीमसेन कृत

श्वेताश्वतर उपनिषद्	१-००

स्वामी अच्युतानन्द

व्याख्यानमाला	२-५०

प० विश्वनाथ विद्यालंकार

बाल ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका	०-७५

पं० हरिश्चन्द्र विद्यालंकार

वैदिक शिष्टाचार	०-३०

त्रिलोकचन्द विशारद

महर्षि दयानन्द	१-००
स्वामी श्रद्धानन्द	१-००
गुरु विरजानन्द	०-५०

पं० मदनमोहन विद्यासागर

आर्य सिद्धान्तदीप	१-२५

स्वामी वेदानन्द

वेदपरिचय	०-३७
स्वाध्याय संग्रह	३-००

स्वामी श्रद्धानन्द कृत

हिन्दु संगठन	१-००

पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

गोरक्षा परम कर्तव्य	०-५०

पं० अत्रिदेव विद्यालंकार

स्त्रियों का स्वास्थ्य और रोग	३-००

पं० चमूपति एम० ए०

जीवन ज्योति	४-००

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली-६

वेदभाष्य

महर्षि दयानन्द कृत

महर्षि ने ऋग्वेद भाष्य के दस मण्डलों में से साढ़े छः मण्डलों का भाष्य ९ जिल्दों में किया है।

ऋग्वेद भाष्यम् प्रथम खण्ड	१२-००
,, ,, द्वितीय ,,	१२-५०
,, ,, तृतीय ,,	१२-००
,, ,, चतुर्थ ,,	१०-००
,, ,, पंचम ,,	१२-००
,, ,, षष्ठम ,,	८-००
,, ,, सप्तम ,,	
,, ,, अष्टम ,,	
,, ,, नवम ,,	१०-००

इन सभी भागों में संस्कृत भाष्य एवं हिन्दी भाष्य दोनों हैं।

केवल हिन्दी भाषा भाष्य भी पृथक् उपलब्ध हैं।

ऋग्वेद भाषा भाष्य प्रथम	७-००
,, ,, ,, द्वितीय	६-२५
,, ,, ,, तृतीय	६-२५
,, ,, ,, चतुर्थ	५-००
,, ,, ,, पंचम	६-००
,, ,, ,, षष्ठम	५-५०
,, ,, ,, नवम	५-००

महर्षि का यजुर्वेद भाष्य

यजुर्वेद भाष्यम् प्रथम	९-००
,, ,, द्वितीय	११-००
,, ,, तृतीय	८-००
,, ,, चतुर्थ	६-००

पं० जयदेव विद्यालंकार कृत चारों वेद भाष्य

ऋग्वेद ७ खण्डों में	५६-००
अथर्ववेद ४ ,,	३२-००
यजुर्वेद २ ,,	१६-००
सामवेद १ ,,	८-००

दर्शन ग्रन्थ

पं० तुलसीराम स्वामी कृत

योगदर्शन	२-००
वैशेषिक	२-५०
सांख्य	२-५०
न्याय	२-००
वेदान्त	२-५०

स्वामी ब्रह्ममुनि कृत

वेदान्त	३-५०
सांख्य	३-००

महात्मा नारायण स्वामी कृत

योग रहस्य	१-२५

स्वामी लक्ष्मणानन्द

ध्यानयोग प्रकाश	३-२५

स्वामी दर्शनानन्द कृत

वैशेषिक	३-५०	सांख्य	२-५०
न्याय	३-२५	वेदान्त	४-५०

आचार्य श्रीराम कृत

योग	४-००	वैशेषिक	४-००
सांख्य	४-००	न्याय	४-००
वेदान्त	४-००	मीमांसा	५-००

पं० उदयवीर शास्त्री कृत

सांख्य दर्शन	८-००
वेदान्त दर्शन	२०-००
सांख्य दर्शन का इतिहास	३०-००
सांख्य सिद्धान्त	१६-००

स्वामी व्यासदेव जी महाराज कृत

आत्मविज्ञान	१०-००
बहिरंग योग	१०-००
ब्रह्मविज्ञान	१४-००
हिमालय का योगी	८-००

उपनिषद् ग्रन्थ

पं० आर्य मुनि कृत

ईश	०-४०
केन	०-५०
माण्डूक्य	०-३१
ऐतरेय	०-५०
तैत्तिरीय	१-२५

स्वामी ब्रह्ममुनि कृत

बृहदारण्यक कथा माला	३-००
छान्दोग्य कथामाला	३-००

स्वामी दर्शनानन्द कृत

उपनिषद् प्रकाश

ईश, केन, कठ, प्रश्न मुण्डक, माण्डूक्य	६-००

पं० भीमसेन कृत

श्वेताश्वतरोपनिषद्	१-००

नारायण स्वामी कृत

ईश	००-४०
केन	००-५०
कठ	००-५०
प्रश्न	००-५०
मुण्डक	००-५०
माण्डूक्य	००-२५
ऐतरेय	००-२५
तैत्तिरीय	१-००
बृहदारण्यक	४-००
छान्दोग्य	५-००

प्रो० सत्यव्रत कृत

एकादशोपनिषद् दो भाग	२५-००

स्वामी सत्यानन्द कृत

एकादशोपनिषद्	५-३३

वेदों के अंग्रेजी भाष्य

Yajur Veda Mahtma Devi Chand	२०-००
Sam Veda Pt. Dharm Deva	१५-००

पं० वैद्यनाथ शास्त्री कृत

सामवेद	२०-००

मुद्रक, प्रकाशक, विजयकुमार ने सम्पादित कर बदलिया प्रिंटिंग प्रेस, दाईवाड़ा दिल्ली में मुद्रित कर वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली से प्रकाशित किया।

❀ ओ३म् ❀

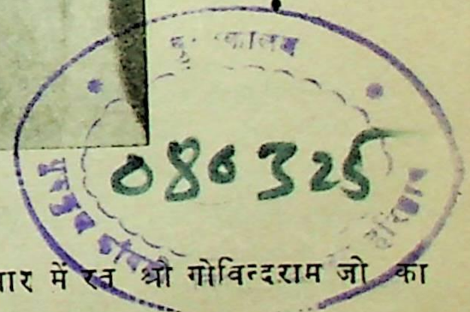
वेदप्रकाश

वेदोऽखिलो धर्म-मूलम्





स्वर्गीय श्री गोविन्दराम जी



सन् १९६० की शिवरात्रि के दिन आर्य-साहित्य के प्रचार-प्रसार में रत श्री गोविन्दराम जी का देहावसान हो गया था।

हम उनके परिवार के सदस्य सन् १९७० की शिवरात्रि पर पुनः प्रतिज्ञा करते हैं कि आर्य-साहित्य के प्रचार-प्रसार में संलग्न "गोविन्दराम हासानन्द" प्रकाशन-संस्थान को अपने अनथक प्रयत्नों से संचित करते रहेंगे।

—विजय कुमार

❀ ओ३म् ❀

वे द प्र का श

वर्ष १८
अङ्क ८

संस्थापक—गोविन्दराम हासानन्द
फाल्गुन २०२६, मार्च १६७०

वार्षिक मूल्य
३-००

सम्पादक : विजयकुमार

आदरी सम्पादक : ब्र० जगदीश विद्यार्थी

वेद प्रवचन

★ स्व० गंगाप्रसाद उपाध्याय

स्वस्ति पंथामनुचरेम सूर्य्याचन्द्रमसाविव।
पुनर्ददता घ्नता जानता संगमेमहि ॥

(ऋग्वेद मंडल ५, सूक्त ५१, मंत्र १५)

अन्वय : वयं स्वस्ति पंथां (पन्थानं) अनुचरेम। सूर्य्याचन्द्रमसौ इव। पुनः ददता, अघ्नता, जानता सह संगमेमहि।

अर्थ : हम लोग (स्वस्ति पंथाम्) कल्याणकारी मार्ग पर (अनुचरेम) चलें। (सूर्य्याचन्द्रमसौ इव) जैसे सूर्य्य और चन्द्रमा चलते हैं। (पुनः) और (ददता) आदर न प्रदान करने वाले के साथ (अघ्नता) हिंसा न करने वाले के साथ (जानता) एक दूसरे के दृष्टिकोण को समझने वाले के साथ (संगमेमहि) संगति करें।

व्याख्या—इस वेदमंत्र में उपदेश दिया गया है कि संसार के भिन्न-भिन्न प्राणी अनेक प्रकार की असमानतायें अथवा विशेषतायें रखते हुए भी किस प्रकार एक-दूसरे का सहयोग प्राप्त कर सकते हैं।

यह तो स्पष्ट ही है कि संसार की कोई दो वस्तुयें एक-सी नहीं हैं। उनमें कुछ समता और कुछ विषमता अवश्य है। यदि कुछ भी विषमता न होती तो दो क्यों होतीं; एक ही होतीं। और यदि एक ही वस्तु होती तो गिनती भी न होती। एक किस-को कहते? एक शब्द का भाव ही दो, तीन, चार की अपेक्षा से है। यदि एक ही वस्तु होती तो यह जगत् जिसमें हम रहते हैं कैसा होता? हम नहीं जानते। हमारी आँखें उस प्रकार के जगत् को देखती नहीं। हमारी बुद्धि उसकी कल्पना नहीं कर सकती, हम जिस जगत् के अंश हैं उसको हमने नहीं बनाया। परन्तु उसमें रहना अवश्य है और उसके गुप्त नियमों का निरीक्षण करके अपने आचरणों को ठीक करना है।

हमारी सबकी यही प्रबल इच्छा रहती है कि कल्याणप्रद मार्ग पर चलें। कोई जान-बूझकर गलत रास्ते पर नहीं चलता। और यदि उसको सन्देह हो जाय कि जिस मार्ग पर वह चल रहा है वह ठीक नहीं तो झट रुक जाता है और यदि निश्चय हो जाय कि वह मार्ग वस्तुतः बेठीक है तो वह उसका परित्याग कर देता है। यह हम सबकी नैसर्गिक इच्छा रहती है। ठीक मार्ग को ही "स्वस्ति पथ" कहते हैं। वही सीधा मार्ग है।

सीधे मार्ग के तीन लक्षण हैं ; प्रथम उस पर चलकर उद्दिष्ट स्थान पर पहुँच सकें। दूसरा वह सरलतम हो अर्थात् सबसे छोटा हो। गधा भी समझता है कि यदि सीधे मार्ग पर जा सकता हो तो घूमकर दूर का मार्ग न पकड़ो। तीसरे उस मार्ग पर चलना सुगम हो। कम-से-कम कठिनाई हो। सुगम और लघुतम मार्ग को भी छोड़ देते हैं यदि उससे उद्दिष्ट मार्ग पर न पहुँच सकें। परन्तु यदि मार्ग छोटा परन्तु दुर्गम या कण्टकाकीर्ण हो तो उसको छोड़कर लम्बा मार्ग लेना पड़ता है। इस तथ्य को मनुष्य के हृदय-पटल पर अंकित करने के लिये बहुत-से दृष्टान्त दिये जा सकते हैं। इस वेद मंत्र में जो दृष्टान्त दिया गया है वह लौकिक भी है और वैज्ञानिक भी। वह है सूर्य और चन्द्र के परस्पर सहयोग का।

चाँद और सूरज को हम नित्य देखते हैं। रात में चाँद चमकता है, दिन में सूर्य। सूर्य बहुत बड़ा है, चाँद बहुत छोटा है। हैं दोनों सितारे जो आकाश में चमकते हैं। आपको ज्ञात है कि सूर्य कितना बड़ा है ? किसी खगोल-विद्याविशारद से पूछिये। पृथ्वी को तो आप जानते ही हैं यह पृथ्वी है अर्थात् प्रथित या फैली हुई। आप तो इसके एक छोटे-से अंश को ही देखते हैं। हममें करोड़ों में एक होगा जो पृथ्वी की चारों ओर परिक्रमा कर आया है। पृथ्वी बहुत बड़ी है। किसी ऊँचे पहाड़ की चोटी पर खड़े हो जाइये और इधर-उधर दृष्टि दौड़ाइये। पृथ्वी की विशालता का कुछ परिचय हो जायगा। परन्तु क्या आपको पता है कि सूर्य और पृथ्वी के परिमाणों में क्या अनुपात है ? यदि पृथ्वी को चूरा करके एक गोला बनावें और ऐसे तेरह लाख गोले इकट्ठे करके फिर उन सबके चूरे को मिलाकर एक बड़ा गोला बनावें तो वह गोला सूर्य के बराबर होगा। और चाँद ! यह तो पृथ्वी के गोले से बहुत छोटा है। जैसे ऊँट के गले में छोटी बिल्ली। इतना बड़ा सूर्य और इतना छोटा चाँद ! इन दोनों के सहयोग से दिन-रात होते हैं। दिन और रात का होना हमारे जीवन के लिए कितना हितकर है, इसकी आप कल्पना नहीं कर सकते। करने का यत्न भी नहीं करते क्योंकि यह एक चिर-परिचित घटना है। बड़ी-से-बड़ी घटनायें यदि सदा होती रहें तो हमारा ध्यान उनकी ओर नहीं जाता जब ध्यान नहीं जाता तो हम उससे उपदेश नहीं लेते। बड़े-से-बड़े उपदेष्टा के साथ रहने वाले उनके नौकर उनके व्याख्यानों पर कभी ध्यान नहीं देते। महात्मा गांधी के जिन उपदेशों को सुनने के लिये लाखों आदमी इकट्ठे हुआ करते थे, उनके जीवन का कोई प्रभाव उनके पुत्र हीरालाल गांधी पर नहीं था। इसी प्रकार चाँद और सूर्य के सहयोग का दृष्टान्त जनसाधारण पर कोई प्रभाव नहीं डालता, इसीलिये वेदमंत्र द्वारा इस दृष्टान्त को देने की आवश्यकता हुई। बात बहुत छोटी है। समक्ष है।[1] समीप है।

1. Plato argues (in Gorgias) that moral selfishness contradicts the physical fellowship and friendship which holds together earth and heaven and contravenes the principle of geometrical equality. He seems to be contending that as, e.g. the planets are kept together in fellowship by the fact that each keeps its appointed place, and does nht violate equality by trespassing on that of its neighbour, so men should abide in a fellowship secured by the fact that each keeps his appointed place and does not violate equality by trespassing to "get more". (Vide "Greek Political Theory—Plato and His predecessors" by Ernest Barker, p. 53, Infra)

१. भावानुवाद—जैसे नक्षत्र अपने-अपने मार्ग में रहते हैं और एक-दूसरे पर आक्रमण नहीं करते, इसी प्रकार मनुष्यों को करना चाहिए। मनुष्यों का जो आचार लोग-लोकान्तर के आचार्य से भिन्न है वह अधर्म है।

फिर भी इतनी बड़ी है कि करोड़ों मनुष्यों ने कभी इस पर ध्यान भी नहीं दिया। इसकी आप परीक्षा कर लीजिये। जिन्होंने इस वेदमंत्र को नहीं पढ़ा उनसे पूछिये कि सहयोग का सबसे अच्छा दृष्टान्त कौन-सा है। जो उत्तर मिले उनको इकट्ठा कर लीजिये। देखिये कि कितने उत्तरों में सूर्य और चाँद का दृष्टान्त दिया गया है। वेद के उपदेशों को यह विशेषता है कि बात छोटी हो परन्तु उसमें भाव बड़ा हो। लाघव में गौरव।

सूर्य और चंद्रमा की यात्राओं पर विचार कीजिये, आपको यह साथ चलते दिखाई नहीं पड़ते। जब सूर्य निकलता है तो चाँद छिप जाता है। परंतु जब चंद्रदर्शन होते हैं तो सूर्यदर्शन होना कठिन हो जाता है।

आप दिल्ली के 'जंतरमंतर' में जाइये और किसी विशेषज्ञ से प्रार्थना कीजिये कि वह मंत्रों द्वारा आपको समझा दे कि सूर्य, पृथ्वी और चाँद की चालें किस प्रकार होती हैं? दिन कैसे होता है? रात कैसे होती है? दिन-रात कैसे घटते-बढ़ते हैं? ऋतु-परिवर्तन कैसे होता है? पृथ्वी के कुछ भाग अत्यन्त गर्म और कुछ अत्यन्त ठण्डे क्यों हैं? उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों के निकट वर्ष के आधे भाग में निरंतर दिन और दूसरे आधे में निरंतर रात क्यों होती है? तो आपको 'सूर्या चन्द्रमसाविव' का ठीक-ठीक अर्थ समझ में आ सकेगा। और यदि आप इस खगोल-सम्बन्धी दृश्य का मानव-समाज की चाल-ढाल से मुकाबिला करें तो आपको आश्चर्य होगा कि इन दोनों दृश्यों में कितना सादृश्य है। और यदि मनुष्य इस सादृश्य को समझ ले तो सामाजिक विकास और सामाजिक उन्नति में कितनी सहायता मिल सकती है!

अब यह दिखलाते हैं कि मनुष्य में क्या-क्या गुण होने चाहिये जिनसे दूसरे लोग उससे आकर्षित होकर उसके साथ मिल सकें। मंत्र में तीन गुणों का वर्णन है—ददता, अघ्नता, जानता। यह तीनों पद तृतीयान्त एकवचन हैं। अर्थात् इस गुण वाले के साथ सहयोग मिल सकता है।

(१) ददता अर्थात् दानशील वाले के साथ। वेद में दानशीलता की महिमा स्थान-स्थान पर दिखाई गई है। 'दाशुष्'[१] शब्द का कई स्थानों में इसी अर्थ में प्रयोग हुआ है। प्रेम परमात्मा का सबसे प्रिय गुण है। भिन्न-भिन्न कोटियाँ तथा भिन्न-भिन्न भाँति की भक्तियाँ इसी प्रेम का रूप हैं। वही मनुष्य ईश्वर का प्रियतम है जो प्रेम करता है। और प्रेम का प्रमाण है दानशीलता। दया भी दानशीलता का एक रूप ही है। जिससे आप प्रेम करते हैं उसके साथ कुछ उपकार करना चाहते हैं। कुछ देना चाहते हैं। और जिसको आप कुछ देते हैं वह समझता है कि आप उससे प्यार करते हैं और वह आपकी ओर आकर्षित होता है। आकर्षण ही संगठन का हेतु है। लोहा चुम्बक की ओर खिंच आता है क्योंकि चुम्बक अपनी शक्ति लोहे को प्रदान करके उसे चुम्बक-जैसा बना देती है। दानी की ओर आकर्षित होना प्रत्येक प्राणी के जीवन से प्रकट होता है। कुत्ते को कभी-कभी एक रोटी का टुकड़ा डाल दिया करो वह हरदम आपके साथ रहने लगेगा। बच्चे को मिठाई दे दिया करो, वह अपनी माता की गोद छोड़कर आपके पास आ जायेगा। और यदि यह दानशीलता दोनों ओर से हो तो दोनों एक-दूसरे की ओर आकर्षित होंगे। जिसमें दानशीलता नहीं उससे सब घृणा करने लगते हैं। यदि आप धनाढ्य हैं तो धन का दान करें, यदि आप शक्ति-सम्पन्न हैं तो शक्ति का दान करें। यदि विद्या का धन आपके पास है तो दूसरों को विद्या का दान दीजिये। इससे आपमें दैवी शक्तियों का संचार होगा और आसुरी प्रवृत्तियाँ कम होंगी।

(२) दूसरा गुण है 'अघ्नता' अर्थात् जो हिंसा न करता हो उसके साथ हम जल्दी मिल सकते हैं। हिंसा क्या है? दूसरे के हित या कार्य में बाधक

१. 'दाशृ दाने'। क्वसु प्रत्ययः— यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि। (ऋग्वेद १।१।६)

होना। आप नहीं चाहते कि आपके मार्ग में कोई रुकावट हो। इससे आपको दु:ख होता है। प्रेम का परिणाम ही अहिंसा है। जिससे आप प्यार करते हैं उसको तो कोई कष्ट देना नहीं चाहते। विश्व-बन्धुत्व के लिये अहिंसा परम आवश्यक गुण है। हिंसक प्राणियों से सभी दूर भागते हैं। और अहिंसक हिंसकों को भी अपना साथी बना लेता है। महात्मा गांधी के लेखों में अहिंसा का बड़े विस्तार के साथ महत्त्व दर्शाया गया है।

(३) तीसरा गुण है 'जानता'। एक-दूसरे को समझने का यत्न करें। समाज-निर्माण में सबसे बड़ा विघ्न न समझने के दोष से पड़ता है। ६० प्रतिशत झगड़े एक-दूसरे को न समझने के कारण होते हैं। पति-पत्नी प्रेम करने को इच्छा करते हुए भी शत्रु बन जाते हैं क्योंकि एक-दूसरे के दृष्टिकोण को समझने का यत्न नहीं करते। भाई-भाई से इसलिये लड़ पड़ते हैं कि एक-दूसरे को समझ नहीं पाते। परस्पर पत्र-व्यवहार करते हुए यदि समझने में कुछ भूल हो जाती है तो दो पुरुष यावत्-जीवन शत्रु बन जाते हैं। दो देशों के निवासी एक-दूसरे के दृष्टिकोण को न समझने के कारण घोर युद्ध कर बैठते हैं जिनमें लाखों मनुष्यों का संहार हो जाता है। अतः वेद का यह उपदेश है कि समाज का सुदृढ़ निर्माण करना चाहते हो तो एक-दूसरे के दृष्टिकोण को समझने का यत्न करो। और यदि भ्रान्ति हो जाय तो मिलकर दूर कर लो। यह संभव है कि आप दोनों के भावों में कोई भेद न हो। संसार के मनुष्य इतने बुरे नहीं होते जितने प्रतीत होते हैं; क्योंकि लोगों का दृष्टिकोण अलग-अलग होता है। बालकों की पाठ्य-पुस्तकों में इसी दोष को स्पष्ट करने के लिये छः अन्धों और हाथी की कहानी गढ़ी गई है। कहते हैं कि छः अन्धे थे, उन्होंने हाथी से संपर्क किया और उसका वर्णन करने लगे। एक ने कहा "हाथी पंखे के समान होता है।" क्योंकि उसने हाथी के केवल कान टटोले थे। दूसरे ने कहा "खम्भे के समान" क्योंकि उसने हाथी के चार पैर छुए थे। तीसरे ने सूंड टटोली थी इसलिये वह बोला कि हाथी लटकने वाली रस्सी के समान होता है। जिसने हाथी की पीठ देखी वह कहता था "भाई, तुम सब झूठे हो। मैंने स्वयं अनुभव किया कि हाथी एक सपाट चौकी के समान होता है। सोचो तो सही कि पंखे के समान होता तो उस पर सवारी कैसे की जाती?" एक बोला- "क्यों गप्पें मार रहे हो? हाथी कोई बड़ी भारी चीज नहीं है। एक हाथ-भर की पतली रस्सी है।" क्योंकि उसने केवल पूँछ टटोली थी। छठे ने हाथी के दाँतों को टटोलकर कहा, "यह कड़ी-कड़ी नुकीली क्या चीज है? क्या इसी को हाथी कहते हैं जिसके लिये ऐसा आश्चर्य किया जा रहा है?"

हाथी की यह कहानी ऐसी प्रसिद्ध है कि कई भाषाओं के कवियों ने इस पर कवितायें रची हैं। वस्तुतः छहों ठीक थे। उनके उत्तरों में भेद इसलिये था कि उनके दृष्टिकोण भिन्न-भिन्न थे। आप किसी विशाल भवन का भिन्न-भिन्न स्थानों पर खड़े होकर फोटो लीजिये। एक ही भवन के भिन्न-भिन्न फोटो दिखाई पड़ेंगे। एक मनुष्य का फोटो भिन्न-भिन्न स्थानों से लिया जाय उसमें भिन्नता होगी। यह सब दृष्टिकोणों की भिन्नताओं के खेल हैं। हम सब भिन्न-भिन्न स्थितियों में होते हैं अतः हमारा दृष्टिकोण भिन्न होता है और हम छहों अन्धों के समान लड़ बैठते हैं। यदि कोई समाखा हमको समझा दे कि बात एक ही है तो हमारी भ्रांति दूर हो जाती है। अतः समाज-संगठन के लिये एक-दूसरे को समझना आवश्यक है।

छोटी बात पर बड़ी लड़ाइयाँ कैसे होती हैं उसका एक निजी उदाहरण देता हूँ। एक मित्र थे कृषि-विभाग के अध्यक्ष। उनके कृषि-परीक्षणालय में गन्ने बहुत अच्छे होते थे। एक दिन उनके एक देहाती सम्बन्धी आये। उन्होंने उनके लिये अच्छे गन्ने मँगाये और खाने के लिये कहा। वह उस समय एक अतिथि-गृह (Drawing room) में बैठे थे। वहाँ बहुमूल्य दरियाँ बिछी हुई थीं। गन्ने की छोई फर्श को खराब न करे, इसलिये उन्होंने अतिथि महोदय के समक्ष एक टोकरी रख दी कि खाते

समय छोइयाँ इसमें डाल दीजिये। अतिथि थे गाँव के रहने वाले। उन्होंने इस प्रकार गन्ने चूसते कभी किसी को नहीं देखा था। वह बिगड़ गये और कहने लगे, "तुमने क्या मुझे बैल समझा है कि मेरे सामने टोकरी लाकर रख दी?" अध्यक्ष महोदय को लेने के देने पड़ गये। बहुत-कुछ क्षमायाचना की परन्तु भ्रांति दूर न हुई। ऐसे उदाहरण बहुत-से मिलेंगे। सभाओं के संगठन तो इसी प्रकार टूटते हैं। अतः समाज-निर्माण के लिये दानशीलता, अहिंसा तथा एक-दूसरे को समझने का यत्न करना यह, आवश्यक है।

भारतीय इतिहास पर दृष्टि डालिये। उदारता का अभाव ही था कि पृथ्वीराज और जयचन्द में मनमुटाव होता गया। और वह मनमुटाव यहाँ तक बढ़ा कि एक सहस्र वर्ष से उसके दुष्परिणाम मिटने पर नहीं आते। महात्मा गांधी के वध का भी यही कारण था। नाथूराम गोडसे महात्मा जी के दृष्टिकोण को समझ नहीं पाया।

भारतवर्ष में दान और अहिंसा दोनों गुणों का प्राचुर्य समझा जाता है। भारतीयों की दानशीलता के कारण ही भारत के सशक्त हजारों और लाखों नर-नारी भिखमंगे बन रहे हैं। पवित्र तीर्थों और भिखमंगों का अटूट सम्बन्ध है। हजारों माता-पिता अपने बच्चों को सिखाते हैं कि किस प्रकार भीख माँगी जाती है। जब रेल गंगा या जमुना के किसी पुल पर से गुजरती है तो सैकड़ों यात्री जेबों से पैसे निकालकर नदी में फेंकते हैं। इसको वह गुप्त दान समझते हैं। जब ग्रहण पड़ता है तो मेहतरों को दान दिया जाता है क्योंकि यह समझा जाता है कि यह मेहतर लोग राहु और केतु की सन्तान हैं और इसलिये उनके पार्थिव उत्तराधिकारी हैं। इनको दान देने से चाँद और सूरज कैद से छूट सकेंगे। नागपंचमी के दिन नागों को दूध पिलाया जाता है और जो इतना साहस नहीं कर सकते वे दीवारों पर साँप बनाकर उनपर दूध चढ़ाते हैं सोचना यह है कि ऐसी दानशील और अहिंसक जाति का यथोचित संगठन क्यों नहीं हो पाता? इसका भी वही एक कारण है। हम वास्तविकता पर विचार नहीं करते। रोटी का चित्र देखने से भूख की निवृत्ति नहीं हो सकती। उस जाति को दानशील कैसे कहा जा सकता है जिसके ब्राह्मण सैकड़ों नर-वर्गों को नीच और अछूत कहकर उनको विद्या-दान नहीं दे सकते? या जिसके लखपति और करोड़पति अपना दान इस रूप में देते हैं कि दान लेने वाले कभी अपने पैरों पर खड़े होने के योग्य न बन पावें और प्रतिदिन अपनी भूख दूर करने के लिये उनके दरवाजों पर हाथ फैलाते रहें। हमारी जातियाँ और उपजातियाँ दूसरों के मार्ग में नित्य रोड़े अटकाती रहती हैं। धर्म का ढोंग धर्म समझा जाता है। बड़े और छोटे का भाव हर बात में पाया जाता है। यदि हम सूर्य और चाँद के समान अपना आचरण करें तो यह सब बुराइयाँ घट सकती हैं। वेद-मंत्रों के अध्ययन का तो यही लाभ है कि हम उनके उपदेशों को अपने दैनिक जीवन में परिणत करने का यत्न करें।

समाचार पत्र (वेदप्रकाश) के स्वामित्व एवं अन्य विषयों से सम्बन्धित विवरण-प्रतिवर्ष, फरवरी मास के उपरान्त प्रथम प्रकाशन में प्रकाशित होना चाहिये।

फार्म-४

(नियम ८ देखिये)

प्रकाशन स्थान	...	दिल्ली
प्रकाशन अवधि	...	मासिक
मुद्रक का नाम	...	विजयकुमार
(क्या भारत का नागरिक है?)		भारतीय
पता	...	४४०८ नई सड़क दिल्ली
प्रकाशक का नाम	...	विजयकुमार
(क्या भारत का नागरिक है?)		भारतीय
पता	...	४४०८ नई सड़क दिल्ली
सम्पादक का नाम	...	विजयकुमार
(क्या भारत का नागरिक है?)		भारतीय
पता	...	४४०८ नई सड़क दिल्ली
उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार-पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों।		M/s गोविन्दराम हासानन्द

मैं विजयकुमार, एतद्द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सत्य हैं।

प्रकाशक के हस्ताक्षर
ता० ५-३-७० विजयकुमार

ऋषि दयानन्द चरित

★ रचयिता—राम अवतार 'वीर'

दोहा

प्रथम प्रभु को सिमरिए पूर्ण हों सब काज।
जीवन दयानन्द का वर्णन करूँ मैं आज ।।

चौपाई

गुजरात काठिया वाड़ में
टंकारा नामी ग्राम हुवा
वहाँ अम्बा शंकर उदीच
ब्राह्मण मुद्दतों से था बसा हुवा
धन दौलत की कमी न थी
सब लोग आ हाथ फैलाते थे
थे साहूकार और ज़मींदार भी
सबसे उच्च कहाते थे
पूजा-पाठ में तत्पर थे और
साम वेदी कहलाते थे
शिव शंकर की पूजा में वह हरदम ध्यान लगाते थे
थे राज दरबार में चढ़े हुए और नम्बरदार कहलाते थे
सब मुख्य आदर करते थे और
चरणों शीश झुकाते थे

दोहा

मालगुजारी का काम भी थे वह सर पर लिए हुए
इसी के कारण राज से रक्षक थे कुछ मिले हुए

चौपाई

धन दौलत का दान कर यश के फल को पाते थे
आशा कर जो आवे द्वार पर निराश न उसे लौटाते थे
थे सत्यवादी सदाचार के जीवन से वह भरे हुए
दीनों और दुखियों की सेवा को थे हर दम खड़े हुए
पर गम की घटाएँ दिल पर थीं
और सीने, नश्तर चलता था
अन्न धन से परिपूरण थे पर पुत्र नहीं था शंकर का
यह कहावत बनी हुई बेटा ही नाम चलाता है
बेटा ही सब क्रियाओं को पूरण रूप कराता है

दोहा

पुत्रशोक में बहुत जब हो गए वह बेचैन
शिव मन्दिर में जाय के बोल ऐसे बैन

चौपाई

हे प्रभु न पूरण आश हुई और
नहीं मनोरथ सफल हुआ
आयु का मध्यम आ पहुँचा
आशा का तरुवर विफल हुआ
अब शोक सिन्धु में डूब रहा हूँ कैसे मन समझाऊँ मैं
महाराज उपाय करो बस जिस से पुत्तर पाऊँ मैं
घर में छाया है अंधियारा उसकी ज्योति जगाऊं मैं
माया-मोह का पुतला पाकर घर को स्वर्ग बनाऊं मैं
एक पुत्र ही मिल जावे तो कुल की वृद्धि होवेगी
काज चले और नाम रहे मेरी भी मुक्ती होवेगी

दोहा

तुम्हरी दया के बिना होवें न पूरण काज
शरण आए की लाज को राखो गरीब निवाज़

चौपाई

परम पिता की कृपा से मन के संकट दूर हुए
तिथिवार और सम्मत सब ही आकर के अनुकूल हुए
बागों में बेलें खिलने लगीं फूलों में रंगत आने लगी
हो गई अमृत की वर्षा कोयल भी राग सुनाने लगी
टङ्कारा पर झूम झूम बादल भी निहार रहे
आकाश पै बैठे हुए देवता जयजयकार पुकार रहे
सम्वत् अठारह सौ इक्यासी विक्रमी नाम मशहूर हुआ
भारत के उत्थान-कारण दयानन्द का ज़हूर हुआ

दोहा

कसा सुन्दर वह समय जां शोक शीत न धूप
अम्बा शङ्कर के भवन जन्में हैं इक पूत

चौपाई

छाया हर्ष घर घर में शङ्कर ने पुत्तर पाया है
धन धन ऐसी माता को जिस ऐसा गौहर जाया है
अब तो अम्बा शङ्कर भी फूला नहीं समाता है
ज्यों ज्यों हर्ष से हटता है त्यों हर्ष ही बढ़ता जाता है
घर घर से बधाइयां आने लगीं
सब मिलकर मंगल गाने लगीं
बलिहारी हो बार बार पुष्पों की झड़ी लगाने लगीं
गोदी माता की भरी और सफल हुए हैं सारे काज
घर घर मंगल गायन हुए और बजने लगे हैं सारे साज

दोहा

सारी घटाएँ दूर हुईं जब भानु का चमकार हुआ
जिस के इक जलवे से मानो रोशन सब संसार हुआ

चौपाई

उसी समय बुला पण्डितों को जन्म-पत्र बनवाया है
ग्रह नक्षत्र देखकर क्या उत्तम नाम रखाया है
मूल शङ्कर तो नाम रखा और
धन दौलत भी दान किया
जो कोई आया द्वार पर उसका भी सन्मान किया
जाति कुटम्ब कबीले से सब लोग बधाई देते हैं
यह खड़े हुए ही द्वारे पर सब ही का आदर लेते हैं
अनाथों को वस्त्र दिए और दुखियों का उपकार किया
भोजन आदि वस्तुओं से सब मित्रों का सत्कार किया

दोहा

पिता के वह प्राण थे और माता की वह जान
गोदी में रहे खेलते वह योगी यशवान

चौपाई

माता का प्रेम बढ़ने लगा जब मूल जरा-सा चलने लगा
इधर उधर इठलाती थी ज्यों
तख्त इन्द्र का मिलने लगा
गोदी में बिठला बालक को माता यह समझाती है
मातृभूमि का गौरव रखना हर दम यही सिखाती है
ऋषि मुनियों की सारी कथाएँ
बैठ एकान्त सुनने लगी
भीषम जैसे वीरों का जीवन उसे बताने लगी
ध्रुव प्रह्लाद और कपिल कणाद
के नाम उसे समझाने लगी
एक एक करके सब का जीवन
कण्ठस्थ उसे कराने लगी

दोहा

सब के मन आनन्द है सब की पूरी आस
इसी खुशी में बीत गए पूरे उनसठ मास

चौपाई

पाँच वर्ष के मूल हुए तब ठुमक ठुमक कर आते हैं
माता बलिहारे जाती है जब मुख से टेर सुनाते हैं
भोजन करने के समय जब पिताजी उसे बुलाते हैं
खुशी खुशी गोदी में बैठे भोजन का भोग लगाते हैं
वे चपल भोजन करते जब जरा सा अवसर पाते हैं
तो भात डाले ही मुख में किलकार मार भग जाते हैं
पिता जी उनको मातृ भाष का
आदि से ज्ञान कराने लगे
मातृ-सेवा का भाव वह हृदय में बिठलाने लगे

दोहा

माता पिता और गुरु बालक की हैं जान
वैसा ही वे पाएँगे जैसा देंगे ज्ञान

चौपाई

आठ वष का हुआ जो शङ्कर यज्ञोपवीत संस्कार हुआ
विद्या के पढ़ने का मानो उसको अब अधिकार हुआ
थे चतुर और पढ़ने से वह ज़रा नहीं घबराते थे
पिता भी उनको यजुर्वेद की संहिता रोज़ पढ़ाते थे
माटी का इक लिङ्ग बना कर घर पर ही पुजवाते थे
मूर्ति पूजा की किरिया वह सहज सहज सिखलाते थे
पितु माता की आज्ञा से शिव पूजन में भी जाने लगे
फल फूल आदि वस्तुओं से शिवजी को रिझाने लगे

दोहा

पिता ने इक दिन मूल से कही अनोखी बात
निश्चय रूप से सिमरियो मिलेंगे भोले नाथ

चौपाई

चौदह वर्ष का मूल हुआ तो पिता जी यह समझाने लगे
शिव पूजन के नियमों का वह पूरण पाठ पढ़ाने लगे
शिव की पूजा को ही उत्तम और उच्च बतलाने लगे
मानो है मुक्ति का मारग उसको यह समझाने लगे

निश्चय के फल सारे हैं और निश्चय की सब बातें हैं
जो निश्चय-रूप से ध्यान करें सोई उसको पाते हैं
सारी विधि सिखला बालक को श्रद्धा से भरपूर किया
व्रत धारण की आज्ञा देकर शङ्कर को मजबूर किया

दोहा

कल को व्रत धारण करो अरु
शिव पूजन को आओ तुम
शिवजी भोले नाथ के
सन्मुख दर्शन पाओ तुम

दोहा

हाथ जोड़ कर मूल की माता ने यूँ अरज़ करी
राखो मेरे लाल पर कृपा दृष्टि प्रेम भरी

चौपाई

अभी तो बालक छोटा है नहीं भूख प्यास को सहने का
शिव पूजन का कठिन तप और रात-जगा से रहने का

दोहा

सारी किरियायें कर लेगा जब युवा अवस्था पावेगा
मत घबराओ पति जी यह सब कुछ कर दिखलावेगा

चौपाई

बालक नहीं अब हुआ स्याना मैंने इसे बताया है
पूजा पाठ सब विधि सहित ही करना इसे सिखाया है

दोहा

इस पूजा को ध्यान से गर पूरा यह कराएगा
तो निश्चय रूप से शिव शंकर के सन्मुख दर्शन पाएगा

चौपाई

पितु आज्ञा को धारन करके मन को वह समझाने लगे
रत-जागे का महातम इतना शिवजी दर्श दिखाने लगे
माता से वह कहने लगे कल पूजन में मैं जाऊँगा
व्रत रखूँगा निश्चय रूप से उसके दर्शन पाऊँगा
मैं तो निश्चय रूप से पूजन को स्वीकार करूँ
परम पिता के दर्शन पाकर जीवन का उद्धार करूँ
प्रभु चरनन के दीद की आशा बड़ी प्रचण्ड हुई
शिव पूजन के वास्ते श्रद्धा अति अखण्ड हुई

दोहा

गर एक रात के जागने मिलते हैं भगवान
तो नींद भरे दो नैनों को कर दूंगा बलिदान

चौपाई

शिव चरनों की पूजा में है खास जरूरत फूलों की
बागीचे से ले चलें यह इच्छा हुई इन दोनों की
गुलशन देखा खुशनुमा सब फूल रही है फुलवारी
जोबन पर है चढ़ी हुई हरी-भरी है हर क्यारी

गुलज़ार बहार अजब छाई
डाली पर बुलबुल चहक रही
क्यारियों में कैसी फूलों की
हरसू खुशबू महक रही

मध्य में एक तालाब खुदा है शीतल जल से भरा हुआ
हर रंग के हैं फूल खिले भौंरों का दल है घिरा हुआ

दोहा

आज्ञा ले कर माली से फूलों को बस तोड़ लिया
पिता सहित ओर मन्दिर की अपने मुख को मोड़ लिया

भजन

तर्ज़—ज़ालिम लोकी शीरी तेरे०

मैं भी जागूँ पिता जी शिव मिलाइए मुझे
उसकी भक्ति का भरके जाम पिलाइए मुझे
जाके मन्दिर में पूजा कराओ बेटा
प्रेम श्रद्धा के फूल चढ़ाओ बेटा
दर्शन देंगे प्रभुजी बुला के तुझे
मैं भी जागूँ पिता जी शिव मिलाइए मुझे
पूजा करके वह ध्यान लगाने लगे
पुजारी मण्डल जब बिस्तर जमाने लगे
पर यह कह करके मन को समझाने लगे
देखो शंकर न नींद सताए तुझे
मैं भी जागूँ पिताजी शिव मिलाइये मुझे
देखा चूहे को भोग लगाते हुए
चढ़ कर शिवजी पै करतब दिखाते हुए
मूल शंकर उठे यह सुनाते हुए
यह तो लक्षण नहीं उस कर्त्तार के
मैं भी जागूँ पिताजी शिव मिलाइये मुझे
मैं तो ऐसा यत्न अब करूँगा पिता
जिसके दर्शन से हो 'वीर' आनन्द सदा
मरने जीने का खटका रहे न जरा
दीजो आज्ञा कि ढूंड अब पाऊँ उसे
मैं भी जागूँ पिताजी शिव मिलाइए मुझे

(क्रमशः)

हमारे यहाँ से प्राप्य कुछ श्रेष्ठ प्रकाशन

मुद्रक, प्रकाशक, विजयकुमार ने सम्पादित कर बदलिया प्रिंटिंग प्रेस, दाईवाड़ा दिल्ली में मुद्रित कर वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली से प्रकाशित किया।

॥ ओ३म् ॥



वैदप्रकाश

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्

❁ ओ३म् ❁

वेद प्रकाश

वर्ष १८ | अङ्क ६ } संस्थापक—गोविन्दराम हासानन्द | चैत्र २०२६, अप्रैल १९७० { वार्षिक मूल्य ३-००

सम्पादक : विजयकुमार | आदरी सम्पादक : ब्र० जगदीश विद्यार्थी

वेद प्रवचन

★ स्व० गंगाप्रसाद उपाध्याय

इन्धानास्त्वा शतꣳहिमा द्युमन्तꣳ समिधीमहि । वयस्वन्तो वयस्कृतꣳसहस्वन्तः सहस्कृतम् ।
अग्ने सपत्नदम्भनमदब्धासो अदाभ्यम् । चित्रावसो स्वस्ति ते पारमशीय ।।

(यजुर्वेद अध्याय, ३, मंत्र १८)

अन्वय : (वयं) इन्धानाः द्युमन्तं त्वा (त्वाम्) शतं हिमाः समिधीमहि । वयस्वन्तः (वयं) वयस्कृतं त्वां समिधीमहि । सहस्वन्तः वयं सहस्कृतं त्वां समिधीमहि । हे अग्ने अदब्धासः वयंसपत्नदम्भनं अदाभ्य त्वां समिधीमहि । हे चित्रावसो ! ते स्वस्ति पारं अशीय ।

अर्थं : (हे अग्ने) यज्ञ की अग्नि (वयं इन्धानाः) जलते हुए हम यज्ञ करने वाले लोग (द्युमन्तं त्वाम्) तुझ प्रकाशयुक्त को (शतं हिमाः) सौ वर्ष तक (समिधामहि) जलावें । (वयस्वन्तः वयं) अन्न रखने वाले हम यज्ञ करने वाले लोग (वयस्कृतं त्वां) अन्न पैदा करने वाले तुझको (समिधीमहि) प्रज्वलित करें। (सहस्वन्तः वयं) बल वाले हम यज्ञकर्ता लोग (सहस्कृतं त्वां) तुझ बल पैदा करने वाले को (समिधीमहि) जलाते रहें । (हे अग्ने) हे अग्नि ! (सपत्नदम्भनं) शत्रुओं के दमन करने वाले (अदाभ्यं) और किसी से हिंसित न होने वाले (त्वां)तुझको (अदब्धासः) हिंसित न होने वाले हम लोग (समिधीमहि) सौ साल तक जलाते रहें । (चित्रावसो) विविध प्रकार के आश्चर्य-जनक रूपों को धारण करने वाले हे अग्निदेव (ते स्वस्ति पारं) तेरे कल्याण-प्रद पार को (अशीय) मैं पा सकूं ।

व्याख्या—इस वेदमंत्र में यज्ञ करने वाले पुरुषों और यज्ञ के साधन अग्नि की योग्यताओं का वर्णन किया गया है । यज्ञ कर्म भौतिक भी है और अभौतिक भी । एक यज्ञ बाहर होता है । अग्नि जलती है और उसमें हवि डाला जाता है । यह तो यज्ञ का भौतिक रूप है । परन्तु केवल अग्नि में घी, कपूर, शक्कर या कपूरकचरी आदि पदार्थों के जलाने मात्र को यज्ञ नहीं कहते । जैसा यज्ञ बाहर हो रहा है उसी के समानान्तर यज्ञ करने वालों के अन्तरात्मा में यज्ञ होना चाहिये तभी यज्ञ की पूर्ति होगी । अध्यात्म यज्ञ के बिना यज्ञ अधूरा रहता है । ऐसे यज्ञ को अग्नि-पूजा (आतिश-परस्ती Fire-worship) कह सकते हैं जो जड़-पूजा के समान है । यज्ञ का अर्थ जड़-वस्तु

की पूजा नहीं है। चेतन जीव अचेतन की उपासना करके सुख-लाभ नहीं कर सकता। याज्ञिकों को चाहिये कि यज्ञ करने से पहले अपने में कुछ योग्यताओं को धारण करें।

इसको आप एक दृष्टान्त द्वारा समझने की कोशिश कीजिये। आपका कोई प्यारा बन्धु आपके घर आता है। आपका समस्त परिवार विशेष सुख का अनुभव करता है। गृह-पत्नी भोजन तैयार करती है। भोजन बनाने की प्रत्येक क्रिया में एक अपूर्व उत्साह होता है। भोजन तैयार होता है। आगन्तुक के समक्ष परोसा जाता है। देखने में तो यह कुछ भौतिक क्रियायें हैं। परन्तु यदि आप अपने मनों का निरीक्षण करें तो हर क्रिया में एक विशेष अभौतिक तरंग ओत-प्रोत मिलेगी। जिस माता का पुत्र कई वर्ष परदेश में काटकर घर को लौटे और वह माता उसके सामने भोजन परोसे तो उस माता का हृदय बतायेगा कि विछुड़े हुए पुत्र के सामने भोजन रखना शुष्क भौतिक क्रिया नहीं है। इसमें कई वर्षों के वियोग के दुःख और पुनर्मिलन के सुख की कहानी छिपी हुई है। परन्तु यदि यही आगन्तुक पुत्र या अतिथि बाजार में हलवाई की दुकान पर खाना खावे तो संभव है कि भोजन अधिक दक्षता से ही बना हो; परन्तु है वह बाहरी क्रिया। खरीदने वाले ने पैसे फेंक दिये और हलवाई ने भोजन तोल दिया। हलवाई को पैसे मिल गये और खाने वाले की उदर-तृप्ति हो गई। इसको प्रीति-भोज तो नहीं कहते। यह शुष्क 'भोज' है; 'प्रीति' का तो प्रश्न ही नहीं उठता। हलवाई की दुकान पर उसका शत्रु भी आता और ठीक दाम देता तो हलवाई उसको भोजन तोल देता है। इसी प्रकार यज्ञ की बात है।

याज्ञिक बाहर आग जलाता है। परन्तु बाहर आग जलाने से पूर्व उसके हृदय में श्रद्धारूपी अग्नि जलनी चाहिये। इसलिये वेदमन्त्र में बड़े सुन्दर शब्दों में कहा है कि हम **जलते हुये लोग** तुझे **जलावें**। जिस प्रकार तू तेजोमय है हम भी तेजोमय हैं। यदि तुझमें भौतिक तेज है तो हमारे भीतर भी अभौतिक तेज जल रहा है। तू निस्तेज नहीं और हम भी निस्तेज नहीं। बाहरी अग्नि और भीतरी अग्नि दोनों की ज्वालायें समानान्तर रूप में जलनी चाहिये। "दोनों तरफ हो आग बराबर लगी हुई।" जहाँ याज्ञिक लोग बिना भीतर के प्रज्वलित किये केवल बाहर की अग्नि जलाते हैं वे साधारण पाचक के समान हैं। जो पाचक अपने स्वामी के लिये उत्तम भोजन बनाता है वह उस भोजन के स्वाद का लाभ नहीं करता। उसे तो केवल वेतन से प्रयोजन है। इसी प्रकार जो याज्ञिक केवल दक्षिणा के लोभ में यज्ञ कराते हैं उनको आध्यात्मिक लाभ तो होता ही नहीं; वह यजमान का भी पूरा भला नहीं कर सकते। यह ठीक है कि यजमान का कर्तव्य है कि याज्ञिकों को दक्षिणा दे। परन्तु इनसे पूर्व याज्ञिकों के हृदय में यज्ञ की श्रद्धा होनी चाहिये। यह पहली योग्यता है जो यज्ञ करने वाले याज्ञिक और यज्ञ के साधन अग्नि में होनी चाहिए। यज्ञ के एक मन्त्र में कहा गया है "सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन।" पूरी रीति से जलती हुई प्रकाश वाली अग्नि में शुद्ध घी की आहुति दीजिये; अधजली धुएँ वाली अग्नि में नहीं। उससे घृत की आहुति का पूरा विश्लेषण न होगा और यज्ञ का पूरा लाभ भी न होगा। लेकिन उसी के साथ याज्ञिक का हृदय भी "सुसमिद्ध" होना चाहिए।

'समिधीमहि' के साथ एक कालसूचक पद है "शतं हिमाः" अर्थात् सौ वर्ष तक। प्रायः मानव-आयु सौ वर्ष की मानी गई है। अर्थात् मनुष्य की आयु लगभग सौ वर्ष (in round figures) की होती है। यज्ञ का सम्बन्ध मनुष्य से है। मनुष्येतर प्राणी तो यज्ञ करने की योग्यता ही नहीं रखते। अतः उनकी आयु कितनी होती है इसका यहाँ कोई प्रश्न नहीं उठता। अन्य प्राणियों की आयु का औसत भी भिन्न-भिन्न है। कुत्ते का और, हाथी का और, चींटी का और, मच्छर या पतंगे का और। 'हिमाः' का अर्थ तो है 'हेमन्त' अर्थात् जाड़े

की ऋतु। परन्तु अवयव को अवयवी के अर्थ में लिया गया है। एक वर्ष में एक बार ही जाड़ा आता है। अतः एक वर्ष के स्थान में 'एक हिम' कहने का भी वही अर्थ है। अग्नि के प्रज्वलन के साथ-साथ 'हिम' शब्द का प्रयोग आलंकारिक भी है और काव्य-कलाप की दृष्टि से भी उचित ही है। "अग्निः हिमस्य औषधिः" (आग शीत की दवा है)। यज्ञ से भी मानव जाति का बाह्य और आभ्यान्तर शैत्य दूर हो जाता है। जीवन का नाम गर्म है। वेद में संवत्सर अर्थात् साल के लिए कहीं शरद् और कहीं वर्ष का प्रयोग हुआ है। शरद् और वर्षा भी तो ऋतुयें ही हैं। यह तो हुई शाब्दिक व्याख्या। तात्पर्य यह है कि "शतंहिमः" अर्थात् आयुभर निरन्तर हम श्रद्धापूर्वक यज्ञ करते रहें। "वयस्वन्तः वयस्कृतं।" 'वयः' नाम है अन्न का। "वय इति अन्न नाम" (निघण्टु २-७-७)। 'वयस्कृत्' का अर्थ हुआ अन्न उत्पन्न करने वाली शक्ति। अग्नि अन्न को उत्पन्न करती है। गर्म देशों में अन्न अधिक उत्पन्न होता है। अतिशीत-प्रधान स्थानों में कुछ भी अन्न नहीं होता। यज्ञ को वैदिक शास्त्रों में अन्न का उत्पादक माना गया है। जहाँ यज्ञ अधिक होंगे वहाँ अन्न भी अधिक उत्पन्न होगा। परन्तु यज्ञ भी तो वही करेगा जिसके पास अन्न है। अतः याज्ञिक लोग अपने को 'वयस्वन्तः' कहते हैं। पृथ्वी माता से गेहूँ की प्रार्थना करने वाला किसान पहले बीज-रूप में गेहूँ रख लेता है तब कृषि की तैय्यारी करता है। यज्ञ भी एक कृषि-कर्म है। यज्ञ है बीज का बोना। अलंकार रूप से कालिदास ने रघुवंश में लिखा है:—

दुदोह गां स यज्ञाय, सस्याय मघवा दिवम्।
संपद् विनिमयेनोभौ दधतुर्भुवनद्वयम् ॥[1]

(रघुवंश १-२६)

इसी भाव को यजुर्वेद के एक और यज्ञ-सम्बन्धी मन्त्र में दर्शाया गया है:—

पूर्णा दर्वि परापत सुपूर्णा पुनरापत।
वस्नेव विक्रीणावहा इष मूर्ज ँ शतक्रतो ॥

(यजुर्वेद अध्याय ३, मंत्र ४९)

'दर्वी' नाम चम्मच का है जिसमें भरकर आहुति दी जाती है। याज्ञिक चम्मच को हवि से भरकर कहता है: "हे चम्मच' तू पूरी भरभर अग्नि में गिर और वहाँ से 'सुपूर्णा' होकर अर्थात् कई गुनी होकर लौट। हे सौ अर्थात् सैकड़ों यज्ञों के साधक अग्नि देव (शतक्रतु) आपसे हम व्यापार करते हैं। हमसे आहुति-रूप दाम लेकर इसके बदले हम को जीवन के साधन दीजिये।"

"सहस्वन्तः सहस्कृते।" 'सह इति बल नाम' (निघण्टु २-९-१७) 'सह' कहते हैं' बल को। सहस्कृत् का अर्थ हुआ "बल को उत्पन्न करने वाला"। याज्ञिक भी अपने को बलवाला कहता है। बलवान् ही बल का मूल्य समझता है और वही अपने से अधिक बलशाली से बल की याचना करता है। निर्बल यज्ञ करने का अधिकारी नहीं।[2] यज्ञ करने के लिये अपने शरीर और अपनी इन्द्रियों पर स्वामित्व होना आवश्यक है। आलसी लोग यज्ञ नहीं करते। वैदिक कार्यकलाप में कई प्रकार के यज्ञों का विधान आता है। उन सब में बल की आवश्यकता होती है—हर प्रकार के बल की, शारीरिक बल को, मानसिक बल की और आत्मिक बल की। यज्ञ का आरम्भ भी बल से होता है और इसका परिणाम भी बल होता है। बलवान् होकर बलवान् अग्नि को प्रज्वलित करो। तुम्हारा बल बढ़ेगा। यह तो एक प्रत्यक्ष बात है कि जो लोग नित्य यज्ञ करते हैं उनको शुद्ध वायु मिलता

---

१. वह दिलीप यज्ञ-कार्य के लिए पृथ्वी को दोहता था। अन्नोत्पत्ति के लिए इन्द्र द्युलोक से वर्षा करता था। दिलीप और इन्द्र दोनों सम्पत्ति के आदान-प्रदान से दोनों लोकों को धारण करते थे।

२. परा व एष सिच्यते योऽवलोऽश्वमेधेन यजते।
"जो बलहीन अश्वमेध यज्ञ करता है, वह पदच्युत हो जाता है।" (तैतिरीय ब्राह्मण ३-८-९-४)

है। शुद्ध वायु रोगों का नाशक होता है, शरीर को पुष्ट करता तथा बल को बढ़ाता है इसलिये कहा कि "सहस्वन्तः सहस्कृते समिधीमति।" अर्थात् बलवान् याज्ञिक बल देने वाले अग्नि को प्रज्वलित करें।

तीन योग्यताओं को बताकर एक चौथी योग्यता का वर्णन करते हैं। अग्नि को "सपत्नदम्भनम्" और "आदम्य" बताया और याज्ञिकों को "अदब्धासः" कहा। 'सपत्न' का अर्थ है शत्रु "सपत्नदम्भ" का अर्थ हुआ शत्रु का दमन करने वाला, "दिम्नोति हिंसा कर्मा।" जो शत्रु का नाश कर सके और शत्रु जिसका नाश न कर सके उसको अदाम्य कहा, याज्ञिक को 'अदब्धास' होना चाहिये। वह ऐसा प्रबल हो कि शत्रु नष्ट हो जाय परन्तु शत्रु से उसको हानि की संभावना न हो। यज्ञ 'सपत्न दंभ' है। यज्ञ में जीवन के शत्रु रोग उत्पन्न करने वाले कृमि नष्ट हो जाते हैं। मानव-जाति के शारीरिक स्वास्थ्य को ठीक रखने का यज्ञ सर्वोत्कृष्ट साधन है। परन्तु साथ ही यज्ञ करने में जिन मंत्रों का प्रयोग होता है उनका अर्थ समझने से यजमान और याज्ञिक सभी को मानसिक बल प्राप्त होता है और आन्तरिक भावनायें शुद्ध होकर कुभावनाओं को फूलने-फलने का अवकाश नहीं मिलता। यज्ञ में घी की आहुतियां डालते हैं तो एक मंत्र का विनियोग दिया है :—

अत्यन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्वर्धस्व चेद्धवर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसे नान्नाद्येन समेधय स्वाहा।

अर्थात् हे अग्नि, मैं जो घी की आहुति देता हूँ यह हवि तेरा आत्मा है, इससे जल, बढ़ और हमको भी प्रज्वलित कर और बढ़ा। प्रजा द्वारा, पशुओं द्वारा, आत्म-ज्ञान द्वारा और अन्न आदि जीवनोपयोगी पदार्थों द्वारा। जब याज्ञिक इस मंत्र की गूढ़ भावनाओं पर विचार करके मंत्र का उच्चारण करता है तो उसकी इच्छाशक्ति और आत्मबल में संवृद्धि होती है। इसी प्रकार अन्यत्र भी कहा "प्रसुव यज्ञं, प्रसुव यज्ञपतिं भगाय।" ऐश्वर्य के लिये यज्ञ को प्रेरित कर।' 'यज्ञपति को प्रेरित कर।' "वाचस्पतिर्वाचं नःस्वदतु" परमात्मा वाणियों के पति या रक्षक हैं। हमारी वाणियों अर्थात् विद्या-प्राप्ति के साधनों को सम्पादित करें।

अन्त का टुकड़ा बड़े महत्त्व का है। ऊपर के जो गुण गिनाये वे नमूने मात्र हैं। यह केवल यज्ञ के लाभों की झाँकी मात्र है। ज्यों-ज्यों यज्ञ विशुद्ध होता जायगा और याज्ञिक को आनन्द आने लगेगा, यज्ञ के अन्य लाभों की उपलब्धि होगी। अग्नि को "चित्रावसु" कहा "चित्राणि विविधानि वसूनि वसन्ति यस्मिन् सः अग्नि।" अनेक प्रकार के अच्छे पदार्थ जिसमें वास करते हैं वह "चित्रावसु" है। जिस प्रकार दूसरे मंत्र में 'शतक्रतु' शब्द आया इसी प्रकार इस मंत्र में चित्रावसु है। शतक्रतु' भी अग्नि है, क्योंकि उपर्युक्त मंत्र में 'शतक्रतु' और 'अग्नि' दोनों शब्दों का एक ही के लिये प्रयोग किया गया है। साधारणतया 'शतक्रतु' का अर्थ देवलोक का राजा इन्द्र किया जाता है और इन्द्र के सौ यज्ञों के विषय में बहुत-सी पौराणिक कथायें गढ़ ली गई हैं। वस्तुतः 'शतक्रतु' अग्नि ही है जिसके द्वारा नाना कोटियों के यज्ञों की सिद्धि होती है और विविध प्रकार के पदार्थ प्राप्त होते हैं। यजमान कहता है "स्वस्ति ते पारं अशीय।" 'मैं तेरे कल्याणकारक पार को पा सकूं।" यज्ञ के लाभ अनन्त और अपार है। यजमान यज्ञ-रूप बनकर उसका पार पाना चाहता है।

यह तो हुई भौतिक अग्नि की बात। अग्नि नाम परमात्मा का भी है और आध्यात्मिक यज्ञ का प्रेरक अग्नि नाम वाला ईश्वर ही है। जिस प्रकार भौतिक अग्नि 'चित्रावसु' है उसी प्रकार ईश्वर भी चित्रावसु है। वस्तुतः भौतिक अग्नि भी तो चित्रा-वसु के द्वारा उत्पन्न हुए विचित्र पदार्थों में से एक है। उसकी विचित्रता अपार है। ईश्वर के अपार आनन्द की थोड़ी-सी झलक पाकर जीव उसका पार पाना चाहता है। जैसे पक्षी अनन्त आकाश में उड़ता हुआ चाहता है कि मैं आकाश का पार पा जाऊँ, उसकी अन्तिम सीमा तक पहुँच जाऊँ, परन्तु

[शेष पृष्ठ ९ पर]

ऋषि दयानन्द चरित

★ रचयिता—राम अवतार 'वीर'

[गतांक से आगे]

चौपाई

दिन भर का उपवास कर पूजा का आदेश लिया
भक्ति भाव से प्रेरित हो कर मन्दिर में प्रवेश किया
तरह-तरह के वस्त्रों से वह मन्दिर आज सजाया था
मानो किसी बरात का दूल्हा उसे बनाया था
फल फूलों की कमी न थी सब लोग थे लेकर खड़े हुए
शिव जी के स्नान को बरतन जल से भरे हुए
इक तरफ पुजारी बैठे ढोलक खूब बजाते थे
भक्तिभाव के गीत सुना कर सबको वह रिझाते थे

दोहा

घण्टे और घड़ियाल की होती थी झंकार
हर हर हर महादेव की होने लगी जय कार

चौपाई

आरती का जब समय हुआ तब आरत-जोत जगाने लगे
घण्टे और घड़ियाल झाँझ से शिव जी को दिखलाने लगे
जय जय शिवशंकर से ही बस आरती का आरम्भ हुआ
मधुर मधुर सुर तालसे हर हर हर शिव शम्भु हुआ
सब लोग खड़े हो, कर जोड़ कर करते हैं पुकार
शिव शम्भु कैलाशपति तुमारी हो जैकार
आरत के ही अन्त में सब लोग आ भोग लगाने लगे
लड्डू पेड़ा सब फल फूल शिव जी पर चढ़ाने लगे

दोहा

इस मंगल को देख कर मूल बहुत आनन्द हुए
श्रद्धा भक्ति प्रेम से पूर्ण वह प्रचण्ड हुए

चौपाई

जब पूजा का आरम्भ हुआ तो मूल अति प्रसन्न हुआ
प्रभु चरनन की सेवा का अति प्रेम उत्पन्न हुआ
हाथ जोड़ कर चरनों में सीस झुका प्रणाम किया
गुण वर्णन कर बानी से मूर्त का सन्मान किया
हाथ में लेकर फूल की माला शिवजी को पहिनाने लगे
शीतल जल कलशों से लेकर उसे स्नान कराने लगे
धूप दीप कर चन्दन आदि रगड़ के तिलक लगाने लगे
सम्मुख बैठ शिव शंकर के मन में ध्यान लगाने लगे

दोहा

रात आधी जब गई सो गए सब मदहोश
जल नैनों पै डाल कर रहे शंकर सन्तोष

चौपाई

आशा दर्श की लगी हुई और मूरत सन्मुख सजी हुई
भूख प्यास और नींद खुमारी आलस की भी तजी हुई
बैठे बैठे दृश्य जो देखा मन में अति ही क्रोध हुआ
मानो इसी घटना के कारण सच्चे प्रभु का बोध हुआ
देखा एक चूहे को जो मूर्ति पर था चढ़ा हुआ
इधर उधर से मटक मटक कर सर के ऊपर खड़ा हुआ
फल फूल जो भोग के कारन शंकर के थे रखे हुए
और लड्डु पेड़े बरफ़ी आदि मेवे भी थे पके हुए

दोहा

एक एक करके चीज़ों का मूस जो भोग लगाने लगे
सामग्री जो वहाँ पर थी सब को खूब उड़ाने लगे

चौपाई

वह मूर्ति पै मण्डराते थे और उत्तम भोजन खाते थे
सोतों को वह जगाते थे और जागों को समझाते थे
मूल ने जब देखी घटना सारी अपनी आँखों से
सीस पकड़ कर बैठ गए उन कोमल दोनों हाथों से
मन एकाग्र न रहा और चित-वृत्ति सब टूट गई
प्रभु दर्शन की अभिलाषा उसी समय ही फूट गई
डोल गया मन उस बालक का ऐसी पूजा भक्ति से
पाप पाखण्डी लीला से और शिव शम्भु की शक्ति से

दोहा

चित्र यह सारा देख कर चित्त पूजा से उचाट हुआ
श्रद्धा और भक्ति का बादल एकदम ही दो पाट हुआ

भजन

उठो नींद से ए भाइयो, शिवरात आ गई है।
हर वर्ष ठोकरों से, हमको जगा रही है।
बातल-परसतियों के, दामन में फँस चुके थे।
पापी पाखंडियों से, हमको छुड़ा गई है।
पापी की पोप लीला, जब कि मची हुई थी
शंकर को ज्ञान देकर, गंगा बहा गई है।
बस उसके नूर से ही, शंकर बना था स्वामी।
तौहीद की उसी को, बूटी पिला गई है।
एक ओं का ही डंका, स्वामी ने था बजाया।
यश आज सारी दुनियाँ, उस के ही गा रही है।
वैदिक धरम पर चलकर, हो 'वीर' तूँ भी शैदा।
जाती की वेदी तुम को, हर दम बुला रही है।

चौपाई

आसन से उठ खड़े हुए और पिता को आके जगाने लगे
घटना जो देखी थी सारी मुख से वह सुनाने लगे
एक चूहे ने शिवजी की वह सारी सामग्री खाई है
नहीं शिवशंकर ने कोई उसको डाँट बताई है
क्या यही शम्भु कैलाश के वासी जिनका नाम सुनाते थे
सब के दण्डदाता और पालक रक्षक जिसे बताते थे
अपनी रक्षा करी न उसने चूहे से भी हीन हुआ
न यह शिवशंकर है कंकर मुझको तो यक़ीन हुआ

दोहा

उठो पिताजी दूर करो मन में संकट भारी है
शिवशंकर ने आज कैसे अद्भुत रचना धारी है

चौपाई

अम्बाशंकर उठे नींद से मूल को यह समझाने लगे
गुस्से से चेहरा लाल कर आँखों से धमकाने लगे
तुम हो मूरख क्या जानो
यह पूजा किस विधि होती है
भक्ति करना कठिन काम है
खाने की नहिं रोटी है
यह केवल उसकी रचना थी
और केवल उसकी माया थी
क्या इक चूहे की जानो
सन्मुख उसके काया थी

शिव पूजन का भंग कर बातें मुझे सुनाता है
भूख प्यास की तृष्णा लागी कहता क्यों शरमाता है

दोहा

एक सिपाही साथ कर घर को फ़ौरन भेज दिया
भोजन न करने का उसको डाँट-डपट आदेश दिया

चौपाई

पहुँचे जब घर पर शंकर तो
माता को प्रणाम किया
कर इच्छा भोजन की जाहिर
खाने को पकवान लिया
माता जी यूँ कहने लगी
मत मूल व्रत को भंग करो
पिता जी होंगें अति क्रोधमय
उनका भी कुछ संग करो

पहर रात है केवल बाकी फिर जो चाहे खा लेना
जूँ तूँ करके बीत जाएगी एक-आध घड़ी बिता लेना
माता जी न कहो मुझे कुछ भूख ने बहुत सताया है
नींद खुमारी चढ़ी हुई है इसने भी घबराया है

दोहा

भोजन खा प्रसन्न हुए और ऊपर से जलपान किया
खाट बिछा कर सो गए नींद का यूँ सन्मान किया

चौपाई

सुबह हुई जब आए पिता जी तेवर उनके चढ़े हुए
बानी में भी क्रोध भरा था माथे पर बल पड़े हुए
आते ही बस पकड़ मूल को चपतों से समझाने लगे
मूरख पापी और अधर्मी नाम उसके बतलाने लगे
मालूम हुआ तू पागल है हठधर्मी है अज्ञानी है
पूर्वजों की टाल बात को करता तू मनमानी है
व्रत पूजा के नियम तोड़ कर बड़ा अनुचित काम किया
शिव शम्भु कैलाश के वासी का मानो अपमान किया

दोहा

मरता क्यों नहीं डूब कर यह सूरत क्यों दिखलाता है
शिवजी को बतला के कंकर जीवन नष्ट कराता है

दोहा

माता आगे बढ़ी झपट कर शंकर को सम्भाल लिया
क्या अपराध हुवा बालक से उन पर यह सवाल किया

चौपाई

क्या हुई गर हुई कमी कुछ पूजा में इस बालक से
क्षमा माँगूंगी शम्भु से उस रक्षक से प्रतिपालक से

दोहा

कुछ जानती है हो गए नाराज अगर वह शिवशंकर
न जाने नष्ट ही कर देंगे या कष्ट मिलेगा भयंकर

चौपाई

शान्त सुभाश्रो रहेंगे जब तक
फिर तो कोई कमी नहीं
क्रोध किया गर उन्होंने छिन भर
उस सम भी कोई गमी नहीं

दोहा

दिन भर के उपवास ने इसका मन भरमाया था
इसी के कारण छोड़ कर पूजा को घर आया था

चौपाई

हाथ जोड़ कर कहने लगे क्यों
पिता जो क्या अपराध हुआ
जिसके कारन आपको क्रोध अति अगाध हुआ
दर्शन का कौन अभिलाषी रतजगा से क्या था काम
स्वर्ण सुपन्न की नींद में पड़े हुए थे सब निष्काम
पूजा भक्ति कैसी वहाँ पर नींद खुमारी छाई हुई
घोट घाट कर पानी मानो सबने
भंग की प्याली चढ़ाई हुई
न भूख ने मुझे सताया था
न नींद ने मुझे घबराया था
केवल उस घटना ने आकर जीवन को उलटाया था

दोहा

अब पार ब्रह्म के प्रेमी की जोत इस तन में है जगी हुई
सच्चे शिव के दर्शन की है तृष्णा मन में लगी हुई

चौपाई

उत्तर सुनकर मूल के पिता जी तो घबराने लगे
पास बिठा कर प्यार से बातें उसे समझाने लगे
वेद पुराण और शास्त्र सारे जिस दम तू पढ़ जावेगा
भेद इन सारी बातों का फिर अपने आप खुल जावेगा
रतजगा और ब्रत पूजा साधन एक सिखाया है
सहन करना भूख प्यास का केवल तुम्हें बताया है
शिवजी तो कैलाश पर हैं वह थी उसकी मूर्ति
श्रद्धा और विश्वास से हो पाते हैं सब पूर्ति

दोहा

बरसों ही जिन तप किया छोड़ दिया आराम
सदा भटकते मर गए मिला न उनको धाम

चौपाई

मूल शङ्कर यह जाँच गए, था पत्थर का आकार वहाँ
जिसका फल फूल आदि से करते थे सत्कार वहाँ
साथ ही घर के इक ब्राह्मण वेदों का जो आमल था
सत शास्त्रों का पंडित था और पुरानों का भी फाजिल था
निरुक्त निघंटु और मीमांसा पढ़ना उससे आरंभ किया
पूरण विद्या के पढ़ने का सन्मुख उसके प्रण किया
हरदम विद्या के पढ़ने में चित को वह लगाने लगे
मानो पूर्ण ब्रह्मचर्य्य का जीवन वह बिताने लगे

दोहा

रहते थे वह भवन में पर जानो कमल समान
आयु सोलह वर्ष की होने लगी थी आन
बाल काण्ड दयानन्द का पूर्ण हुआ है 'वीर'
वैराग काण्ड आरम्भ करो मन में धर के धीर

इति

[शेष पृष्ठ ६ का]

आकाश तो अनन्त है; उसकी सीमा नहीं। अतः भरसक यत्न करने पर भी पक्षी थोड़ा-बहुत हाथ-पैर मारकर थककर बैठ रहता है। परन्तु उसकी उड़ान की इच्छा की तृप्ति नहीं होती। जीव भी जब परमात्मा के गुणों का चिंतन करने लगता है तो उसके ज्ञान की पिपासा बढ़ जाती है। वह जितना जानता है उससे अधिक जानना चाहता है; जितना आनन्द भोगता है उससे अधिक आनन्द की आकांक्षा होती है। अपार की अपारता में यही तो विशेषता है कि पार पाने की प्रेरणा बनी रहे, परन्तु पार मिले नहीं। परमात्मा पूर्ण है। जीव अपूर्ण और अल्प है। यदि जीव पूर्ण होता तो उसके जानने और करने के लिए क्या शेष रहता। और यदि अब पूर्ण हो जाय तो आगे उसकी उन्नति रुक जाय। परन्तु न पार मिलता है न पार खोजने की इच्छा ही समाप्त होती है, ऐसी परिस्थिति में जीव विचित्रता को लक्ष्य में रख-कर यही कह सकता है कि "ते पारं अशीय"—मैं तेरा पार पा जाता। ●

हमारे यहाँ से प्राप्य कुछ श्रेष्ठ प्रकाशन

वीर सावरकर कृत

हिन्दुत्व ३.५०
१८५७ का स्वातन्त्र्य समर १८.००
मोपला (उपन्यास) ४.००
गोमान्तक (उपन्यास) ४.००
क्रान्ति का नाद ४.५०
क्रान्तिकारी चिट्ठियाँ ३.००
शस्त्र और शास्त्र ४.५०

स्वामी विवेकानन्द कृत

विश्वशान्ति का सन्देश ३.००
कर्म योग २.५०
भक्तियोग २.५०
वेदान्त भक्ति और वन्दना २.५०
हम क्या चाहते हैं १.५०

पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार कृत

एकादशोपनिषद् (दो भाग) २५.००
गीता भाष्य १२.००
वैदिक संस्कृति के मूलतत्व ६.००

पं० उदयवीर शास्त्री कृत

सांख्यदर्शन का इतिहास ३०.००
सांख्य सिद्धान्त १६.००
सांख्य दर्शन ८.००
वेदान्त दर्शन २०.००

स्वामी व्यासदेव महाराज कृत

आत्मविज्ञान १०.००
ब्रह्मविज्ञान १४.००
बहिरंग योग १०.००
हिमालय का योगी ८.००

पं० शिवशंकर शर्मा काव्यतीर्थ

वैदिक इतिहासार्थ निर्णय ८.५०
ओंकार निर्णय १.५०
जाति निर्णय ४.००
श्राद्ध निर्णय ३.५०
त्रिदेव निर्णय ४.००
वैदिक विज्ञान २.००

वैद्य गुरुदत्त कृत

इतिहास की परम्पराएँ १२.००
धर्म और समाजवाद ६.००
धर्म संस्कृति और राज्य ८.००
भारत गांधी नेहरू की छाया में १०.००
भारत में राष्ट्र २.५०
गीता का अध्ययन १५.००

भाई परमानन्द कृत

मेरे अन्त समय का आश्रय
भगवद्गीता ५.००

स्वामी रामतीर्थ कृत

सफलता की कुञ्जी १.५०

स्वेट मार्डन कृत

आगे बढ़ो २.००
आप क्या नहीं कर सकते ? १.००
अपना खर्च कैसे घटायें ? १.००
चिन्तामुक्त कैसे हों ? १.००
हँसते-हँसते कैसे जियें ? १.००
जो चाहें सो कैसे पायें ? १.००
अवसर को पहचानो १.००
अपने आपको पहचानो १.००
Everyman A King 3.00
Getting On 3.00
Self Investment 3.00
Rising in the World 3.00
The Secret of Achievement 3.00
Miracle of Right Thought 3.00

नरेन्द्र नाथ कृत

सिगरेट बीड़ी कैसे छोड़ें १.००

अरविन्द नाथ कृत

एक लाख नौकरियाँ २.००

रवि श्रीवास्तव

दो सौ स्माल स्केल इण्डस्ट्रीज २.००

डा० लक्ष्मी नारायण शर्मा कृत

गर्भस्थिति प्रसव और शिशुपालन २.००
हम सुखी कैसे रहें ? २.००

बलराज मधोक कृत

भारत की सुरक्षा ४.००
भारत की विदेश नीति
एवं अन्य समस्याएँ ५.००
हिन्दु राष्ट्र १.५०
भारतीय जनसंघ १.५०
डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी ६.००
जीत या हार (उपन्यास) ३.००

शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय कृत

गृहदाह ७.००
सविता ७.००
शेष का परिचय ७.००
शेष प्रश्न ६.००
विप्रदास ६.००
पथ के दावेदार ७.००
लेन देन ६.००
देना पावना ६००
विजया ५.००

रवीन्द्रनाथ टैगोर

नावदुर्घटना ६.००
घर और बाहर ४००
कुमुदिनी ६.००
त्याग का मूल्य ६.००
शिक्षा २.५०

रघुनाथ प्रसाद पाठक

होनहार बच्चे २.००
नैतिक जीवन २.५०

सुरेन्द्र कुमार

सुभाष २.००
पटेल २.००

मुन्शी प्रेमचन्द कृत

वरदान (उपन्यास) ४.००

विमल मित्र कृत

मुझे याद है ३.५०

नानकसिंह कृत

प्रायश्चित की सीमाएँ ५.००

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली-६

वेदभाष्य

महर्षि दयानन्द कृत

महर्षि ने ऋग्वेद भाष्य के दस मण्डलों में से साढ़े छः मण्डलों का भाष्य ९ जिल्दों में किया है।

ऋग्वेद भाष्यम् प्रथम खण्ड	१२-००
,, ,, द्वितीय ,,	१२-५०
,, ,, तृतीय ,,	१२-००
,, ,, चतुर्थ ,,	१०-००
,, ,, पंचम ,,	१२-००
,, ,, षष्ठ ,,	८-००
,, ,, सप्तम ,,	
,, ,, अष्टम ,,	
,, ,, नवम ,,	१०-००

इन सभी भागों में संस्कृत भाष्य एवं हिन्दी भाष्य दोनों हैं।

केवल हिन्दी भाषा भाष्य भी पृथक् उपलब्ध हैं।

ऋग्वेद भाषा भाष्य प्रथम	७-००
,, ,, ,, द्वितीय	६-२५
,, ,, ,, तृतीय	६-२५
,, ,, ,, चतुर्थ	५-००
,, ,, ,, पंचम	६-००
,, ,, ,, षष्ठ	५-५०
,, ,, ,, नवम	५-००

महर्षि का यजुर्वेद भाष्य

यजुर्वेद भाष्यम् प्रथम	९-००
,, ,, द्वितीय	११-००
,, ,, तृतीय	८-००
,, ,, चतुर्थ	६-००

पं० जयदेव विद्यालंकार कृत चारों वेद भाष्य

ऋग्वेद ७ खण्डों में	५६-००
अथर्ववेद ४ ,,	३२-००
यजुर्वेद २ ,,	१६-००
सामवेद १ ,,	८-००

दर्शन ग्रन्थ

पं० तुलसी राम स्वामी कृत

योगदर्शन	२-००
वैशेषिक	२-५०
सांख्य	२-५०
न्याय	२-००
वेदान्त	२-५०

स्वामी ब्रह्ममुनि कृत

वेदान्त	३-५०
सांख्य	३-००

महात्मा नारायण स्वामी कृत

योग रहस्य	१-२५

स्वामी लक्ष्मणानन्द

ध्यानयोग प्रकाश	३-२५

स्वामी दर्शनानन्द कृत

वैशेषिक	३-५०	सांख्य	२-५०
न्याय	३-२५	वेदान्त	४-५०

आचार्य श्रीराम कृत

योग	४-००	वैशेषिक	४-००
सांख्य	४-००	न्याय	४-००
वेदान्त	४-००	मीमांसा	५-००

पं० उदयवीर शास्त्री कृत

सांख्य दर्शन	८-००
वेदान्त दर्शन	२०-००
सांख्य दर्शन का इतिहास	३०-००
सांख्य सिद्धान्त	१६-००

स्वामी व्यासदेव जी महाराज कृत

आत्मविज्ञान	१०-००
बहिरंग योग	१०-००
ब्रह्मविज्ञान	१४-००
हिमालय का योगी	८-००

उपनिषद् ग्रन्थ

पं० आर्य मुनि कृत

	०-४०
केन	०-५०
माण्डूक्य	०-३१
ऐतरेय	०-५०
तैत्तिरीय	१-२५

स्वामी ब्रह्ममुनि कृत

बृहदारण्यक कथा माला	३-००
छान्दोग्य कथामाला	३-००

स्वामी दर्शनानन्द कृत

उपनिषद् प्रकाश ईश, केन, कठ, प्रश्न मुण्डक, माण्डूक्य	६-००

पं० भीमसेन कृत

श्वेताश्वतरोपनिषद्	१-००

नारायण स्वामी कृत

ईश	००-४०
केन	००-५०
कठ	००-५०
प्रश्न	००-५०
मुण्डक	००-५०
माण्डूक्य	००-२५
ऐतरेय	००-७५
तैत्तिरीय	१-००
बृहदारण्यक	४-००
छान्दोग्य	५-००

प्रो० सत्यव्रत कृत

एकादशोपनिषद् दो भाग	२५-००

स्वामी सत्यानन्द कृत

एकादशोपनिषद्	५-३३

वेदों के अंग्रेजी भाष्य

Yajur Veda Mahtma Devi Chand	२०-००
Sam Veda Pt. Dharm Deva	१५-००

पं० वैद्यनाथ शास्त्री कृत

सामवेद	२०-००

हमारी प्रकाशित प्रसारित पुस्तकें

महात्मा आनन्द स्वामी कृत

तत्त्वज्ञान	३-००
प्रभुदर्शन	२-५०
प्रभुभक्ति	१-५०
आनन्द गायत्री कथा	०-७५
एक ही रास्ता	१-००
शंकर और दयानन्द	०-७५
सत्यनारायण व्रत कथा	०-७५
भक्त और भगवान्	१-००
मानव जीवन गाथा	१-००
उपनिषदों का सन्देश	१-५०
घोर घने जङ्गल में	२-५०
महामन्त्र	१-२५
सुखी गृहस्थ	१-००
बोध कथाएं	३-५०
मानव और मानवता	४-५०
प्रभु मिलन की राह	३-००

प्रो० नित्यानन्द वेदालंकार कृत

पूर्व और पश्चिम	७-५०
जीवन की राहें	४-००
प्रार्थना दीप	२-००
सन्ध्या विनय	१-५०
सु-राज्य की रूपरेखा	०-५०

ब्र० जगदीश विद्यार्थी कृत

दयानन्द सूक्ति और सुभाषित	४-००
विद्यार्थी लेखावली	३-००
वैदिक प्रश्नोत्तरी	२-००
वेद सौरभ	२-००
वैदिक उदात्त भावनाएँ	२-००
ईशोपनिषद्	२-००
कुछ करो कुछ बनो	२-००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	१-५०
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	१-५०
दिव्य दयानन्द	१-२५
प्रार्थना प्रकाश	१-२५
प्रभात वन्दन	१-२५
हास्य विनोद	१-००
ऋग्वेद शतकम्	१-००
अथर्ववेद शतकम्	१-००
यजुर्वेद शतकम्	१-००
सामवेद शतकम्	१-००

पं० भगवद्दत्त कृत

भारतीय संस्कृति का इतिहास	६-००
आर्य राजनीति के मूल तत्त्व	०-३०

महर्षि दयानन्द कृत

उपदेश मंजरी	२-५०
आत्मकथा	०-४०
स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश	०-१०
वेदान्तिध्वान्त निवारण	०-२०
वेदविरुद्ध मत खण्डन	०-३७
शिक्षापत्रीध्वान्तनिवारण	०-३७
आर्याभिविनय	०-७५
आर्योद्देश्यरत्नमाला	०-१५
ऋग्वेद भाष्य का प्रथम सूक्त	०-२५
भ्रान्ति निवारण	०-३७
व्यवहारभानु	०-३०
भ्रमोच्छेदन	०-२५
गोकरुणानिधि	०-२०
गृहस्थाश्रम	०-६२
काशी शास्त्रार्थ	०-२०
सत्यधर्म विचार	०-२५
आर्यसमाज के नियमोपनियम	०-१०
ईशोपनिषद्	०-२५
बालशिक्षक	०-३७

पं० रामचन्द्र देहलवी कृत

देहलवी लेखावली	३-५०
ईश्वर ने दुनिया क्यों बनाई ?	०-४०

महात्मा नारायण स्वामी कृत

आर्य समाज क्या है	०-७५
वैदिक यज्ञ रहस्य	०-३७

पं० आर्य मुनि कृत

ईश-उपनिषद्	०-४०
केन-उपनिषद्	०-५०
माण्डूक्य ,,	०-३१
ऐतरेय उपनिषद्	०-५०
तैत्तिरीय ,,	१-२५

प्रो० सुरेशचन्द्र वेदालंकार कृत

मन की अपार शक्ति	१-२५
आकर्षक व्यक्तित्व कैसे बने ?	१-५०

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय कृत

विवाह और विवाहित जीवन	२-५०

पं० रामगोपाल विद्यालंकार

दयानन्द चित्रावली	२-५०

स्वामी ब्रह्ममुनि कृत

बृहदारण्यक उपनिषद् कथा	३-००

पं० भीमसेन कृत

श्वेताश्वतर उपनिषद्	१-००

स्वामी अच्युतानन्द

व्याख्यानमाला	२-५०

प० विश्वनाथ विद्यालंकार

बाल ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका	०-७५

पं० हरिश्चन्द्र विद्यालंकार

वैदिक शिष्टाचार	०-३०

त्रिलोकचन्द विशारद

महर्षि दयानन्द	१-००
स्वामी श्रद्धानन्द	१-००
गुरु विरजानन्द	०-५०

पं० मदनमोहन विद्यासागर

आर्य सिद्धान्तदीप	१-२५

स्वामी वेदानन्द

वेदपरिचय	०-३७
स्वाध्याय संग्रह	३-००

स्वामी श्रद्धानन्द कृत

हिन्दु संगठन	१-००

पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

गोरक्षा परम कर्तव्य	०-५०

पं० अत्रिदेव विद्यालंकार

स्त्रियों का स्वास्थ्य और रोग	३-००

पं० चमूपति एम० ए०

जीवन ज्योति	४-००

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली-६

मुद्रक, प्रकाशक, विजयकुमार ने सम्पादित कर बदलिया प्रिंटिंग प्रेस, दाईवाड़ा दिल्ली में मुद्रित कर वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली से प्रकाशित किया।

॥ ओ३म् ॥



वेदप्रकाश

वेदोऽखिलो धर्म-मूलम्

सत्यार्थ प्रकाशः

विशेषताएँ—

१. पं० भगवद्दत्त रिसर्चस्कालर द्वारा सम्पादित महर्षि की हस्तलिखित प्रति से मिलान करके छापा गया एकमात्र संस्करण।
२. पैराग्राफों पर क्रमसंख्या इसकी दूसरी विशेषता है। इस प्रकार की संख्या का विशेष लाभ यह रहता है कि कहीं आप 'सत्यार्थ प्रकाश' के उद्धरण देना चाहें तो समुल्लास की संख्या और पैराग्राफ-संख्या लिखकर 'सत्यार्थ प्रकाश' के ठीक स्थल का पता लिख सकेंगे।
३. प्रत्येक पृष्ठ पर उस पृष्ठ में आ रहे विषय का उल्लेख।
४. विशेष रूप से बनवाए हुए २६ पौण्ड के एण्टिक कागज पर मोती-सी छपाई, आकर्षक आवरण।

मूल्य

एक प्रति	३.५०
२५ प्रतियाँ	७०.००
५० प्रतियाँ	१३२.००
१०० प्रतियाँ	२६०.००

आज ही आदेश देकर मंगायें।



प्रभु-मिलन की राह

छपकर तैयार

हो गई है!

मूल्य : साढ़े तीन रुपये

आज ही आदेश दें

—प्राप्तिस्थान—

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली-६

वेदभाष्य

महर्षि दयानन्द कृत

महर्षि ने ऋग्वेद भाष्य के दस मण्डलों में से साढ़े छः मण्डलों का भाष्य ९ जिल्दों में किया है।

ऋग्वेद भाष्यम् प्रथम खण्ड		१२-००
,, ,,	द्वितीय ,,	१२-५०
,, ,,	तृतीय ,,	१२-००
,, ,,	चतुर्थ ,,	१०-००
,, ,,	पंचम ,,	१२-००
,, ,,	षष्ठ ,,	८-००
,, ,,	सप्तम ,,	
,, ,,	अष्टम ,,	
,, ,,	नवम ,,	१०-००

इन सभी भागों में संस्कृत भाष्य एवं हिन्दी भाष्य दोनों हैं।

केवल हिन्दी भाषा भाष्य भी पृथक् उपलब्ध हैं।

ऋग्वेद भाषा भाष्य	प्रथम	७-००
,, ,, ,,	द्वितीय	६-२५
,, ,, ,,	तृतीय	६-२५
,, ,, ,,	चतुर्थ	५-००
,, ,, ,,	पंचम	६-००
,, ,, ,,	षष्ठ	५-५०
,, ,, ,,	नवम	५-००

महर्षि का यजुर्वेद भाष्य

यजुर्वेद भाष्यम् प्रथम		९-००
,, ,,	द्वितीय	११-००
,, ,,	तृतीय	८-००
,, ,,	चतुर्थ	६-००

पं० जयदेव विद्यालंकार कृत चारों वेद भाष्य

ऋग्वेद	७ खण्डों में	५६-००
अथर्ववेद	४ ,,	३२-००
यजुर्वेद	२ ,,	१६-००
सामवेद	१ ,,	८-००

दर्शन ग्रन्थ

पं० तुलसी राम स्वामी कृत

योगदर्शन	२-००
वैशेषिक	२-५०
सांख्य	२-५०
न्याय	२-००
वेदान्त	२-५०

स्वामी ब्रह्ममुनि कृत

वेदान्त	३-५०
सांख्य	३-००

महात्मा नारायण स्वामी कृत

योग रहस्य	१-२५

स्वामी लक्ष्मणानन्द

ध्यानयोग प्रकाश	३-२५

स्वामी दर्शनानन्द कृत

वैशेषिक	३-५०	सांख्य	२-५०
न्याय	३-२५	वेदान्त	४-५०

आचार्य श्रीराम कृत

योग	४-००	वैशेषिक	४-००
सांख्य	४-००	न्याय	४-००
वेदान्त	४-००	मीमांसा	५-००

पं० उदयवीर शास्त्री कृत

सांख्य दर्शन	८-००
वेदान्त दर्शन	२०-००
सांख्य दर्शन का इतिहास	३०-००
सांख्य सिद्धान्त	१६-००

स्वामी व्यासदेव जी महाराज कृत

आत्मविज्ञान	१०-००
बहिरंग योग	१०-००
ब्रह्मविज्ञान	१४-००
हिमालय का योगी	८-००

उपनिषद् ग्रन्थ

पं० आर्य मुनि कृत

	०-४०
केन	०-५०
माण्डूक्य	०-३१
ऐतरेय	०-५०
तैत्तिरीय	१-२५

स्वामी ब्रह्ममुनि कृत

वृहदारण्यक कथा माला	३-००
छान्दोग्य कथामाला	३-००

स्वामी दर्शनानन्द कृत

उपनिषद् प्रकाश
ईश, केन, कठ, प्रश्न मुण्डक, माण्डूक्य ६-००

पं० भीमसेन कृत

श्वेताश्वतरोपनिषद्	१-००

नारायण स्वामी कृत

ईश	००-४०
केन	००-५०
कठ	००-५०
प्रश्न	००-५०
मुण्डक	००-५०
माण्डूक्य	००-२५
ऐतरेय	००-७५
तैत्तिरीय	१-००
वृहदारण्यक	४-००
छान्दोग्य	५-००

प्रो० सत्यव्रत कृत

एकादशोपनिषद् दो भाग	२५-००

स्वामी सत्यानन्द कृत

एकादशोपनिषद्	५-३३

वेदों के अंग्रेजी भाष्य

Yajur Veda	२०-००
Mahtma Devi Chand	
Sam Veda	१५-००
Pt. Dharm Deva	

पं० वैद्यनाथ शास्त्री कृत

सामवेद	२०-००

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली-६

❀ ओ३म् ❀

वे द प्र का श

वर्ष १८ | संस्थापक—गोविन्दराम हासानन्द | वार्षिक मूल्य
अङ्क ११ | ज्येष्ठ २०२७, जून १९७० | ३-००

सम्पादक : विजयकुमार आदरी सम्पादक : ब्र० जगदीश विद्यार्थी

सन्ध्या

★ नारायणदत्त वैद्य, सिद्धान्तालङ्कार

सन्ध्या=सम्+ध्या=अच्छी तरह ध्यान करो। सन्धिवेला में ध्यान करो। सायं-दिन और रात्रि के सन्धिवेला में, प्रातः-रात्रि और दिन की सन्धिवेला में ध्यान करो। उस विश्वपति का ध्यान करो, जिसने तुम्हें यह पवित्र चोला (मनुष्य शरीर) कर्मपरायण रहने के लिए दिया। विश्व विभूतियाँ जीवन साधना के लिए दीं।

उसका ध्यान तुम्हें प्रकाश देगा। उसका ध्यान तुम्हें शक्ति देगा। उसके गुणों की स्तुति से तुम्हारे अन्तःकरण में पवित्र भावनाओं का उदय होगा। उसकी प्रार्थना से तुम्हें पुरुषार्थ में बल मिलेगा। उसकी उपासना से तुम्हें दिव्य आनन्द प्राप्त होगा।

उपत्वाऽग्ने दिवे दिवे दोषावस्तर्धिया वयम्।
नमो भरन्त एमसि॥ ऋग्वेद १।१।७॥

(अग्ने) हे प्रकाश और तेज के पुञ्ज, अग्रिणी-देव! (वयं) हम सब (दिवे दिवे) प्रतिदिन (दोषावस्तः) सायं प्रातः (नमो भरन्तः) नमस्कार करते हुए, स्वयं को तुम्हारे चरणों में समर्पित करते हुए (त्वा-उप-एमसि) तुम्हारी उपासना करते हैं।

वेदों में सभी मन्त्रों के आरम्भ में ओ३म् का उच्चारण किया जाता है। 'ओ३म्' का उच्चारण करते हुए 'ओ' का प्लुत उच्चारण किया जाता है। उपासक का ध्यान 'ओ३म्' और उसके अर्थ की भावना में बना रहे अतः प्लुत उच्चारण का विधान है।

ओ३म् ईश्वर का सर्वोत्तम नाम समझा जाता है। 'ओ३म्' अक्षर में ईश्वर के सब गुणों का समावेश हो जाता है। माण्डूक्योपनिषद् में माण्डूक्य ऋषि ने लिखा है—

"ओमित्येदक्षरमिदं सर्वं तस्योपाख्यानम्"

ओ३म् एक ऐसा अक्षर है जिसमें उस प्रभु के सर्वगुणों का (उपाख्यान) वर्णन आ जाता है। यजुर्वेद के ४०वें अध्याय का मन्त्र है :—

"ओ३म् क्रतो! स्मर, कृतं स्मर"

हे क्रतो! कर्मशील जीव! तू ओम् का स्मरण कर। अपने किए हुए कर्म का स्मरण कर।

ओ३म् को 'प्रणव' कहते हैं। प्रणव जिसके द्वारा ईश्वर की (प्र) प्रकृष्ट=विशेष प्रकार से (नव) स्तुति की जावे। योगदर्शन में पतञ्जलि मुनि उपदेश देते हैं—

"तस्य वाचकः प्रणवः" "तज्जपस्तदर्थभावनम्"

ईश्वर का वाचक (प्रणव) ओ३म् है। उसका जप करो, अन्तःकरण में उसके अर्थ की भावना बनाए रखो।

"ओ३म्" शब्द की संक्षिप्त व्याख्या करते हुए अद्वैत वेदान्त के आदि प्रवक्ता गौडपाद आचार्य लिखते हैं :—

आकारो नयते विश्वमुकारश्चापि तैजसम्।
मकारश्च पुनः प्राज्ञं नामात्रे विद्यतेगतिः॥

ओ३म् शब्द तीन अक्षरो से बना है—अ उ म्। अकार ईश्वर के विश्वरूप का बोधक है। समस्त सृष्टि ईश्वर में प्रविष्ट है, ईश्वर में समाई हुई है। ईश्वर सर्वत्र सर्वदा व्यापक है। सृष्टि के अन्दर-बाहर ईश्वर समाया हुआ है। वह सर्वत्र सर्वदा "अस्ति रूप" है। जगत् का आदिकारण है।

उकार तैजसरूप का बोधक है। ईश्वर तेजः-स्वरूप है, चित् स्वरूप है। उसके तेज से ही सूर्यादि पिण्ड तेजोमय हैं। उसकी ज्योति से ही ज्योतिर्मय हैं। वह सर्वोत्कृष्ट है। सम्पूर्ण विश्व विभूतियाँ उसी की देन हैं।

मकार प्राज्ञ का बोधक है। उसका ज्ञान प्रकृष्ट है। उसका ज्ञान निरतिशय है। सृष्टि की उत्पत्ति, धारण, प्रलय सभी उसके निरतिशय ज्ञान, सर्वज्ञता के बोधक हैं। उसके ज्ञान के मान, प्रमाण में सभी लोक-लोकान्तरों का समावेश है। वही इसका नियन्त्रण करने वाला है। सृष्टि की उत्पत्ति, धारण, प्रलय में उसके ज्ञान में किसी प्रकार का आवेश नहीं। वह सदानन्द है।

इस प्रकार सत्, चित्, आनन्द ब्रह्म का बोधक "ओ३म्" है।

म् के पश्चात् अमात्र अवस्था आती है। इस अवस्था में उपासक स्वयं को इतना लीन अनुभव करता है जिसका वर्णन वाणी या लेखिनी से नहीं किया जा सकता।

सन्ध्या मन्त्र

आचमन मन्त्र

ओ३म् शन्नोदेवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शंयोरभिस्रवन्तु नः॥ यजुर्वेद ३६। १२॥

(देवीः) दिव्य माँ (आपः) आपकी सब जगह पहुँच है, आप सर्वव्यापिनी हैं। (नः) हमारे, सब जनों के (अभिष्टये) सर्वतोमुखी इष्ट-सिद्धि के लिए (पीतये) पूर्णानन्द की प्राप्ति के लिए (शम्) कल्याणकारिणी (भवतु) होवें।

(शंयोः) सुख, समृद्धि और आनन्द की (नः) हमारे (अभिस्रवन्तु) चारों ओर वर्षा करें।

इस मन्त्र का उच्चारण कर दाहिने हाथ की अञ्जलि में जल लेकर तीन बार आचमन करें।

असहाय बच्चे के लिए माँ से बढ़कर कोई भरोसा नहीं। हमारी, सब प्राणियों की माँ देवी है। उसके पास सब दिव्य विभूतियाँ हैं। वह आपः है, जहाँ जायें वहाँ वह हमारे साथ है, जिस समय चाहें वह हमारे पास है। वह कल्याणकारिणी है। उपासक उसकी शरण में जाता है। ऐहिक और पारलौकिक आनन्द के लिए प्रार्थना करता है।

अङ्ग-स्पर्श मन्त्र

ओ३म् वाक् वाक्। ओ३म् प्राणः प्राणः।
ओ३म् चक्षुः चक्षुः। ओ३म् श्रोत्रं श्रोत्रम्।
ओ३म् नाभिः। ओ३म् हृदयम्। ओ३म् कण्ठः।
ओ३म् शिरः। ओ३म् बाहुभ्यां यशोबलम्।
ओ३म् करतल करपृष्ठे॥

इस मन्त्र में "यशोबलम्" का सम्बन्ध सभी मन्त्रांशों से है। हे प्रभो! (वाक् वाक्) आप हमारी वाणी और रसना में यश और बल को प्रदान कीजिये। (प्राणः प्राणः) हमारे नासों में—घ्राण और प्राण-संचार में यश और बल प्रदान कीजिये। (चक्षुः चक्षुः) हमारे नेत्रों में, दृष्टि में और दर्शन भावना में यश और बल प्रदान कीजिये। (श्रोत्रं श्रोत्रम्) हमारे कानों में, श्रवणशक्ति में यश और बल प्रदान कीजिये। (नाभिः) हमारे पाचन-संस्थान में यश और बल प्रदान कीजिये। (हृदयम्) हमारे हृदय में यश और बल प्रदान कीजिये। (कण्ठः)

हमारे कण्ठ में यश और बल प्रदान कीजिये। (शिरः) हमारे मस्तिष्क में यश और बल प्रदान कीजिये। (बाहुभ्यां यशोबलम्) हमारी दोनों बाहुओं में यश और बल प्रदान कीजिये। (करतल करपृष्ठे) हमारे हाथों के तल और पृष्ठभाग में यश और बल प्रदान कीजिये।

इस मन्त्र के उच्चारण से पूर्व बाएँ हाथ की अञ्जलि में जल लीजिये। दाहिने हाथ के अग्रभाग से जल के साथ जिस-जिस अङ्ग के लिए यश और बल के निमित्त प्रार्थना करें उस अङ्ग का स्पर्श करें।

शरीर ही धर्म और कर्म का साधन है। ऐहिक और पारलौकिक सुख की प्राप्ति के लिए प्रथम उपाय है इन्द्रियों में यश और बल। हम अपनी इन्द्रियों से इस प्रकार कर्म करें जिससे अपना भी भला हो, सर्वजन का भी भला हो।

कर्म करने के लिए इन्द्रियों में बल जीवन-पर्यन्त बना रहे तभी हम सुख और शान्ति के मार्ग का अनुसरण कर सकते हैं।

मार्जन मन्त्र

ओ३म् भूः पुनातु शिरसि। ओ३म् भुवः पुनातु नेत्रयोः। ओ३म् स्वः पुनातु कण्ठे। ओ३म् महः पुनातु हृदये। ओ३म् जनः पुनातु नाभ्याम्। ओ३म् तपः पुनातु पादयोः। ओ३म् सत्यं पुनातु पुनः शिरसि। ओ३म् खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र॥

(भूः) सर्वव्यापक, प्राणों के आधार प्रभो! (शिरसि) सिर में, मस्तिष्क में (पुनातु) पवित्रता प्रदान करें।

(भुवः) सर्वोत्कृष्ट, सकल कष्टों के निवारक प्रभो! (नेत्रयोः) हमारे नेत्रों में (पुनातु) पवित्रता प्रदान करें।

(स्वः) सुखस्वरूप प्रभो! (कण्ठे) हमारे कण्ठ में (पुनातु) पवित्रता प्रदान करें।

(महः) महान् प्रभो! (हृदये) हमारे हृदय में (पुनातु) पवित्रता प्रदान करें।

(जनः) विश्व के जनक प्रभो! (नाभ्यां) हमारे पाचन-संस्थान में (पुनातु) पवित्रता प्रदान करें।

(तपः) ज्ञान और तेजोमय प्रभो! (पादयोः) हमारे पैरों में (पुनातु) पवित्रता प्रदान करें।

(सत्यं) सदा एकरूप एकरस प्रभो! (शिरसि) हमारे मस्तिष्क में (पुनातु) पवित्रता प्रदान करें। (पुनः) यह हमारी पुनः प्रार्थना है।

मस्तिष्क ही सब संवेदनाओं और संचालन का केन्द्र है अतः इसके लिए पुनः प्रार्थना की गई है।

(खं ब्रह्म) सर्वव्यापी महान् प्रभो! (सर्वत्र) सब अङ्गों में (पुनातु) पवित्रता प्रदान करें।

इस मन्त्र के उच्चारण के पूर्व बाएँ हाथ की अञ्जलि में जल लेवें। दाहिने हाथ के अग्रभाग से जिस-जिस अङ्ग की पवित्रता के लिए प्रार्थना करें उस-उस अङ्ग पर जल का अभिषिञ्चन करें।

ऐहिक और पारमार्थिक सुख-प्राप्ति के लिए इन्द्रियों में पवित्रता परमावश्यक है। अपवित्र विचार और कर्म, इन्द्रियों के यश और बल को तो हरते ही हैं साथ ही हमारे दुःख के कारण भी बने रहते है।

प्रार्थना के साथ संकल्प और पुरुषार्थ दोनों की आवश्यकता है। प्रभु का भरोसा, सत्य संकल्प और पुरुषार्थ से हमारी प्रार्थना सफल होगी, केवल मुख के उच्चारण से नहीं।

प्राणायाम मन्त्र

ओ३म् भूः। ओ३म् भुवः। ओ३म् स्वः। ओ३म् महः। ओ३म् जनः। ओ३म् तपः। ओ३म् सत्यम्।

इस मन्त्र के शब्दों का अर्थ पूर्व मन्त्र में किया जा चुका है। इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए प्राणायाम करना चाहिए। मन्त्र का मानसिक उच्चारण करना चाहिये।

प्राणायाम—प्राण की गति पर नियन्त्रण करना प्राणायाम कहलाता है। प्राणायाम की विशेष प्रक्रिया (जिससे श्वास-प्रश्वास तथा अन्तरीय शक्ति-प्रवाह पर नियन्त्रण पाकर योगी प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि की ओर प्रगति करता है) का ज्ञान और अभ्यास तो किसी सिद्ध अभ्यास योगी की शरण में रहकर ही प्राप्त किया जा सकता है।

साधारण जन के लिए सुविधापूर्वक श्वास-

प्रश्वास का सुख-नियन्त्रण ही प्राणायाम का प्रथम अभ्यास है।

प्राणायाम विधि—

योग दर्शन में योग के आठ अङ्गों का उपदेश देते हुए प्राणायाम से पहले आसन का विधान है। आसन का अर्थ है बैठने का प्रकार। इसके लिए पतञ्जलि मुनि कहते हैं :—

"स्थिर सुखमासनम्"

जिस प्रकार बैठने में आपको स्थिर सुख का अनुभव हो। असुविधा न हो, बैचैनी न हो, हाथ-पैर तथा अङ्गों की स्थिति को बदलने की आवश्यकता अनुभव न हो, मन विचलित न हो, वही आसन उपयोगी है।

इसमें इतना विचार अवश्य रखना चाहिए कि प्राणायाम के लिए इस प्रकार के आसन को स्वीकार करना चाहिए जिसमें मस्तक, ग्रीवा और वक्ष एक रेखा में सीधे रहें। इससे श्वास-प्रश्वास में सहज भाव बना रहेगा।

सर्वप्रथम अन्दर के श्वास को खींचकर शनैः-शनैः बाहर निकालो। कुछ समय बाहर ही रोको। फिर शनैः-शनैः श्वास को अन्दर की ओर ले जाओ। कुछ समय अन्दर ही रोको। बाहर-अन्दर रोकते समय ऊपर लिखे मन्त्र का मानसिक जप करो। श्वास को अन्दर अथवा बाहर रोकने का समय उतना ही होना चाहिए जितना समय प्रशांत भावना के साथ सुविधापूर्वक रोका जा सके, उसमें किसी प्रकार का उद्वेग न हो। इस प्रकार तीन बार अथवा अधिक बार इस प्रक्रिया की पुनरावृत्ति करो।

कुछ अभ्यासी प्राणायाम की विधि का नीचे लिखे प्रकार से वर्णन करते हैं :—

अंगूठे से दाहिने नासारन्ध्र को बन्द करके बाएँ नासारन्ध्र से श्वास को धीरे-धीरे अन्दर भरो। फिर अंगूठे और तर्जनी अंगुली से दोनों नासारन्ध्रों को बन्द कर अन्दर ही श्वास को रोको। कुछ समय रोकने के बाद अंगूठा हटाकर दाहिने नासारन्ध्र से श्वास को धीरे-धीरे बाहर निकालो। फिर दोनों नासारन्ध्रों को अंगूठे और तर्जनी अंगुली से बन्द करके श्वास को बाहर ही रोको। फिर बाएँ नासारन्ध्र को तर्जनी अंगुली से बन्द करके दाहिने नासारन्ध्र से धीरे-धीरे श्वास को अन्दर भरो। फिर अंगूठे और तर्जनी अंगुली से दोनों नासारन्ध्रों को बन्द करके श्वास को अन्दर ही रोको। पुनः बाएँ नासारन्ध्र से श्वास को धीरे-धीरे बाहर निकालकर बाहर ही कुछ समय रोको।

इस प्रकार क्रमशः दाहिने और बाएँ नासारन्ध्रों से श्वास को अन्दर भरने, बाहर निकालने और अन्दर-बाहर रोकने की प्रक्रिया का तीन बार अभ्यास करो। कुछ समय अभ्यास के पश्चात् अँगूठे और अंगुली से नासारन्ध्रों को बन्द करने की आवश्यकता न होगी। स्वयं ही अभ्यासी यह अभ्यास कर सकेगा।

अन्दर-बाहर श्वास रोकते हुए ऊपर लिखे मन्त्र का जप करो। श्वास उतना समय ही रोको जितना समय सुखपूर्वक सुविधा से रोक सको। घबराहट बिलकुल अनुभव न हो।

धीरे-धीरे श्वास रोकने का समय इस प्रकार बढ़ाते जाओ जिसमें किसी प्रकार की असुविधा का अनुभव न हो।

असुविधा के साथ श्वास रोकने के बुरे परिणाम हो सकते हैं। श्वास रोकने में हठधर्मिता कभी न करनी चाहिए।

प्राणायाम का विशेष अभ्यास इस विद्या के विशेषज्ञ से परामर्श करके उसके निकट रहकर ही करना अच्छा है।

अघमर्षण मन्त्र

ओ३म् ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत। ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रोऽर्णवः ॥

ओ३म् समुद्रादर्णवादधि संवत्सरोऽजायत। अहोरात्राणि विदधद् विश्वस्य मिषतो वशी ॥

ओ३म् सूर्याचन्द्रमसौधाता यथा पूर्वमकल्पयत्। दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः ॥

अथर्ववेद अ० ८ । व० ४८ । मन्त्र १-२-३ ॥

सर्वप्रथम परमेश्वर के (अभीद्धात्तपसः) सर्वतः ज्योतिर्मय ज्ञानरूप तप से (ऋतं च सत्यं च) ज्ञान के साधन और सृष्टि के प्रकट सत्ता रूप में धारण और सञ्चालन के नियम (अध्यजायत) प्रकट हुए। (ततः) उसके अनन्तर (रात्रिः अजायत) सृष्टि का अँधकारमय अव्यक्त रूप (अजायत) स्फुरित हुआ। (ततः) उसके अनन्तर (अर्णवः समुद्रः) तरंगितसमुद्र, जलीय अवस्था का आविर्भाव हुआ।

(विश्वस्य मिषतः) विश्व-रचना के विचार से (वशी) विश्व को नियन्त्रण करने वाले परमेश्वर ने (समुद्राद् अर्णवात्) तरंगित जलीय अवस्था के अनन्तर (संवत्सरः) कालकल्पना को (अजायत) व्यक्तरूप दिया। इस कालकल्पना में (अहोरात्राणि) दिन और रात्रि की (विदधत्) व्यवस्था की।

(धाता) विश्व के धारण करने वाले प्रभु ने दिन-रात की व्यवस्था के साथ (यथापूर्व) पूर्व सृष्टि-क्रम के अनुसार (सूर्याचन्द्रमसौ) सूर्य और चन्द्र लोकों को (दिवं च) और द्युलोक को (पृथिवीं च) और पृथिवीलोक को (अन्तरिक्षं) द्युलोक और पृथिवी लोक के बीच अन्तरिक्ष लोक को (अथो) इसके साथ ही (स्वः) सुखपूर्वक संसार में रहने के लिए सकल सामग्री को (अकल्पयत्) रचा।

प्रभु के नियम नित्य एक-से हैं। सृष्टि और प्रलय का क्रम प्रवाह से अनादि रूप में चला आ रहा है। जगत्-निर्माता (यथापूर्वं) पूर्व सृष्टि नियमों और क्रमों के अनुसार सृष्टि-रचना करता है। वही इस सृष्टि का (वशी) नियन्त्रण करने वाला और (धाता) धारण-पोषण करने वाला है।

प्रभु विश्व को प्रकटरूप में लाने वाला और धारण-पोषण करने वाला है, इस तत्व को समझने वाला मानव पाप कर्म नहीं कर सकता। उसे प्रभु सदा सर्वत्र अपने सामनें दृष्टिगोचर होगा। प्रभु न्यायकारी है। वह हमारे कर्मों का सत्य न्याय के अनुसार फल देने वाला है। इस नियामक न्यायाध्यक्ष के सामने पाप कर्म करने का साहस कोई ज्ञानी पुरुष नहीं कर सकता।

इसी दृष्टिकोण से यह मन्त्र अघमर्षण, (पापों का नाश करने वाला) कहलाता है।

मनसा परिक्रमा मन्त्र

ओ३म् प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षिता आदित्या इषवः। तेभ्योनमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तंवो जम्भे दध्मः॥

अथर्ववेद सू० २७। मं० १॥

(प्राची दिग्) प्राची दिशा का (अधिपतिः) अधिनायक स्वामी (अग्निः) प्रकाश और तेज का पुञ्ज अग्नि है। वह (असितः) बन्धनरहित है। वही (रक्षिता) हमारा रक्षक है। (आदित्याः) प्राण अथवा अहिंसा की भावनाएँ (इषवः) उसके बाण हैं जिससे हमारी रक्षा करता है।

(तेभ्यो नमः) प्राची दिशाओं के प्रति हमारा नमस्कार है। अधिपतिभ्यो नमः) अधिनायक अग्नि के प्रति हमारा नमस्कार है। (रक्षतृभ्यो नमः) बन्धनरहित रक्षकों के प्रति हमारा नमस्कार है। (इषुभ्यो नमः) प्राणरूपी बाणों अथवा अहिंसा की भावनाओं रूपी बाणों के प्रति हमारा नमस्कार है। (एभ्यो अस्तु) इस सब के प्रति हमारा नमस्कार है।

(यः) जो (अस्मान्) हम सब प्राणियों को (द्वेष्टि) द्वेष करता है (यं) जिसे (वयं) हम सब प्राणी (द्विष्मः) द्वेष करते हैं। (तं) उस दुर्भावना, छल-कपट आदि हमारे द्वेष के उद्भावक पाप समूह को (वः) आपके (जम्भे) नाशकारी जम्भ जबड़े में (दध्मः) धारण करते हैं।

प्राची शब्द प्रउपसर्ग के साथ अञ्चुधातु से बना है। अञ्चु का अर्थ है "गति"। प्राची का अर्थ हुआ "प्रगति"।

प्रगति की दिशाओं का अधिपति अग्नि है। प्रगति के लिए प्रकाश और शक्ति की आवश्यकता है। अग्नि का अर्थ अग्रिणी भी किया गया है। भौतिक जगत् में भी प्रगति का अधिपति अग्नि है। सब भौतिक प्रगतिशील यानों और यन्त्रों में किसी-न किसी रूप में अग्नि ही उनका अधिनायक होता है। आध्यात्मिक जगत् में प्रभु का प्रकाश और तेज का रूप ही हमारी प्रगतियों का अधिनायक है।

प्रगति में प्रकाश और तेज तो अधिनायक हैं पर यदि प्रगतिशील जीव के आगे कोई बन्धन आ जाय तो भी प्रगति मन्द हो जाती है। प्रभु (असितः) बन्धन से परे है। उसने जीव को कर्म करने में स्वतन्त्र बना रखा है। उसमें मोहरूपी जीव को बाँधने वाला तत्व नहीं है। फलभोग में अवश्य जीव परतन्त्र है। प्रभु सत्य न्याय के अनुसार जीव को कर्मफल देगा। असित बन्धनरहित प्रभु के साम्राज्य में जीव के आगे कर्म करने का मैदान खुला है। प्रगति के साधन भी इस दयालु प्रभु ने जगत् में जुटा रखे हैं।

प्रगति के बाण (आदित्य) प्राण हैं। प्राण प्रगति में बाधा डालने वाली भावनाओं और शक्तियों के लिए इषु हैं। प्राणशक्ति सभी बाधाओं को दूर कर प्राणी को प्रगति के मार्ग में अग्रसर बनाए रखती है।

आदित्य का अर्थ "अहिंसा की भावनाएँ" भी हैं। दिति का अर्थ है "हिंसा"। दिति की सन्तान दैत्य कहलाती है। आदित्य का अर्थ हुआ "अहिंसा"। अदिति की सन्तान आदित्य है। आदित्य का अर्थ हुआ "अहिंसा की भावनाएँ"।

योगदर्शन में पतञ्जलि मुनि ने कहा है :—

"अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैर त्यागः"

योगदर्शन २। ३५॥

अहिंसा को जिसने अपने अन्तःकरण में प्रतिष्ठित कर लिया उसके समीप आते ही सब प्राणियों की सब प्रकार की वैर भावनाएँ नष्ट हो जाती हैं। हिंसक प्राणी भी अहिंसा की भावना का परित्याग कर प्रेमपूर्वक वहाँ विराजते हैं।

प्रगति की दिशा के प्रति हमारा संकल्प ही प्रगति दिशा को नमस्कार करना है। प्रभु के प्रकाश और तेज को अन्तःकरण में देखो, नतमस्तक होकर उसके सहाय को स्वीकार करो। सत्य के प्रति सांसारिक बन्धनों का तिरस्कार कर उस असित प्रभु का सहारा लो। उसकी प्राणशक्ति अथवा अहिंसा की भावनाओं का विनम्र आचरण सभी बाधाओं को दूर करेगा, ऐसी श्रद्धा मन में बनाए रखो। यही वास्तविक नमस्कार है।

मन में दुर्भावनाएँ न आवें। दुर्भावनाएँ ही हमें अपवित्र बनाती हैं। ये दुर्भावनाएँ प्राणीमात्र की शत्रु हैं जिनसे परस्पर विद्वेष का प्रसार होता है। प्रभु के दरबार में पूर्ण न्याय है। वहाँ इन दुर्भावनाओं का दण्ड हमें भोगना ही पड़ेगा, अतः इनका परित्याग करो। प्रभु पवित्र है। पवित्र बनकर ही हम उसके दरबार में आनन्द प्राप्त कर सकते हैं।

ओ३म् दक्षिणादिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नमः इषुभ्यो नम: एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तंवो जम्भे दध्मः॥

अथर्ववेद सू० २७। मं० २॥

(दक्षिणादिग्) दक्षिणदिशा का (अधिपतिः) अधिनायक, स्वामी (इन्द्रः) इन्द्र है। वह तिरश्चिराजी रक्षिता) तिरछी भावनाओं, छल-कपट आदि से हमारी रक्षा करने वाला है। (पितरः इषवः) माता, पिता, आचार्य उसके बाण है जिसके द्वारा तिरछी भावनाओं से हमारी रक्षा करता है।

(तेभ्यो नमः)···इनका अर्थ पूर्व मन्त्र में दिया जा चुका है।

दक्षिण की भावना का नाम दाक्षिण्य, कर्म में कुशलता है। कर्म में कुशल व्यक्ति को दक्ष कहते हैं।

प्रगति में दाक्षिण्य-कर्म में कुशलता चाहते हो तो प्रभु को इन्द्र के रूप में स्मरण करो। इन्द्र सब देवों का राजा है। दिव्य भावनाओं और दिव्य शक्ति का प्रतीक इन्द्र कर्म में कौशल प्राप्त करने के लिए हमारा अधिपति—अधिनायक है।

इन्द्र शब्द इदि धातु से बना है जिसका अर्थ है ऐश्वर्य।

इन्द्र के रूप में प्रभु की उपासना करने वाला भक्त सदा अपने कर्म-कौशल से जीवन में विजयी रहेगा। कर्म-कौशल में तिरछी भावनाएँ छल, कपट, मिथ्या आचार-व्यवहार बाधक होते हैं। उनसे रक्षा करने वाला इन्द्र ही है। इन्द्र राक्षसीय वृत्तियों का संहार करने वाला है।

"मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद"

प्रशस्त माता-पिता और आचार्य के रूप में पितर ही वे बाण हैं जिनसे हम तिरछी भावनाओं से दूर रहकर सत्य आचरण के मार्ग में प्रगति कर सकते हैं।

योगीश्वर कृष्ण ने गीता में उपदेश दिया है—

"योगः कर्मसु कौशलम्"

कर्म में कुशलता का नाम ही योग है। कर्मयोगी को इन्द्र के रूप में भगवान् को नमस्कार कर, उसकी सभी विभूतियों के आगे नतमस्तक रहकर कुशलता के साथ प्रगति के मार्ग में अग्रसर रहना चाहिये।

ओ३म् प्रतीचीदिग् वरुणोऽधिपतिः पृदाकू रक्षिता अन्नमिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्योऽस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥

अथर्ववेद सू० २७। मं० ३॥

(प्रतीचीदिग्) पीछे की दिशा का—पश्चिम का (वरुणः अधिपतिः) अधिनायक वरुण है। वह (पृदाकू रक्षिता) भूखरूपी अजगर से हमारी रक्षा करने वाला है। रक्षा के निमित (अन्नम् इषवः) अन्न ही उसके बाण हैं।

(तेभ्यो नमः)···अर्थ पूर्ववत्।

जिस ओर हमारा मुख है, जिस ओर हमें जाना है वह तो प्राची दिशा हुई। प्रगति की दिशा में सामने देखते हुए हमें पीछे की भी सँभाल रखनी है। हमारे पीछे धूल न उड़े, पीछे से कोई प्रगति में बाधा आकर न उपस्थित हो, उसका भी हमें ध्यान रखना है। प्रगति के मार्ग में सामने हमारे अग्नि है, पीछे की ओर वरुण। वरुण=जिसे हम वरते हैं। वरके अर्थ हैं श्रेष्ठ। गुणों में श्रेष्ठ, शक्ति में श्रेष्ठ हमारा वर—वरुण हमें अग्रगामी बनाता है। अग्नि हमारी गाड़ी को खींचकर प्रगति के मार्ग में ले जाता है। वरुण उस प्रगति में श्रेष्ठ गुणों का आधान करता है। इस गुणाधान से हमारे पीछे धूल नहीं उड़ती। हमारा भूतकाल सदा उज्ज्वल दीखता है।

वरुण जल का भी देवता है। वरुण में शीतलता है। प्रगति में अग्नि के साथ वरुण की आवश्यकता है। अग्नि में तेज और वरुण में शीतलता है। वरुण के बिना अग्नि दाहक भी बन सकता है। वरुण के साथ अग्नि प्रगति देता है। अग्नि हमें भस्म न कर देवे अतः पीछे से वरुण हमारी रक्षा के लिए उद्यत है। प्रभु अग्नि भी है वरुण भी। उपासक दोनों गुणों से उसको स्तुति करता है। इस स्तुति के साथ उपासक अपने अन्दर तेज को धारण करता हुआ भी अपने जीवन को ऐसा बनाता है जिसमें शीतल शान्ति और सन्तोष बने रहें। शान्ति और सन्तोष प्रगति में थकावट नहीं आने देते। इससे प्रगति निरन्तर बनी रहती है। वरुण के रूप में प्रभु को स्मरण करता हुआ उपासक अपने अन्दर श्रेष्ठ गुण और शीतल शान्त भावना तथा सन्तोष को धारण करता है।

भूखा मनुष्य कभी शान्त और शीतल नहीं रह सकता। उसके सन्तोष का बाँध टूट जाता है। भूख एक ऐसा पृदाकू=अजगर है जो सबको डसने के लिए दौड़ता है। पृदाकू शब्द पृत् और आकू दो शब्दों का जोड़ है। पृत् शब्द 'पृ' धातु से बना है, जिसके अर्थ हैं—पालन-पोषण। पृत्=शरीर के पालन-पोषण के निमित आकू=आकूत=उद्वेग उत्तेजना उठती है। इस उत्तेजना को शान्त करने के लिए इषु (बाण) हैं अन्न। वरुण प्रभु हमारी भूख जिसके कारण शारीरिक और मानसिक उद्वेग बना रहता है अन्नरूपी बाणों से शान्त करता है। वरुण की कृपा से अन्न की उपज भी अच्छी होती है, देश में अकाल नहीं आने पाता।

वरुणरूपी प्रभु को और उसकी देन को हमारा नमस्कार हो।

ओ३म् उदीचीदिक् सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिता अशनि रिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्योऽस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥

(उदीचीदिक्) उत्तर दिशा अथवा उन्नति के मार्ग का (अधिपतिः सोमः) अधिनायक सोम है।

वह (स्वजः) स्वयंभू है। वही (रक्षिता) हमारा रक्षक है। (अशनिः) अशनि (इषवः) हमारी रक्षा के निमित्त उसके बाण हैं।

(तेभ्यो नमः)…अर्थ पूर्ववत्

सामने हमारे अग्नि है। पीछे वरुण। दाहिने इन्द्र और बाएँ सोम। सोम सर्व जगत् का उत्पादक प्रभु। उमा प्रकृति के साथ, प्रकृति के द्वारा जगत् को उत्पन्न करने वाला सोम है। प्रकृति जगत् का उपादान कारण है, परमेश्वर निमित्त कारण। परमेश्वर स्वज है, स्वयंभू है। सदा एकरस है, एकरूप है। प्रकृति अजा होते हुए भी रूप परिवर्तन करती रहती है। प्रलय में वह अव्यक्त रहती है। सृष्टिकाल में उसे प्रकट रूप देने वाला निमित्त कारण परमेश्वर है। सोम प्रभु इस सृष्टि को प्रकट रूप देने वाला निर्माता, रक्षक और पुनः अव्यक्त रूप (प्रलय अवस्था) में लाने वाला है। जीव इस प्रकट रूप सृष्टि में कर्म करता है। यह सृष्टि इसकी कर्मभूमि है।

कर्म करने में जीव स्वतन्त्र है। कर्मफल के अशन (भोग) में जीव पर परमेश्वर का नियन्त्रण है। जीव के कर्मफल का अशन भोग (अशनि) ही परमेश्वर के इषु हैं जिनके द्वारा अनेक योनियों में जीवों को भेजकर वह संसार का निर्माण करता है।

प्रगति को सन्मार्ग पर रखने के लिए, जीव को उन्नति के पथ पर लाने के लिए सत्य न्याय के अनुसार कर्मफल का नियन्त्रण आवश्यक है। ये ही परमेश्वर के बाण हैं जिनसे जीव को उन्नति के मार्ग, सन्मार्ग में प्रगतिशील रहने की प्रेरणा मिलती है। प्रगति के मार्ग पर चलते हुए मनुष्य को सदा यह ध्यान रहना चाहिये कि ईश्वर न्यायकारी है। वह प्रत्येक कर्म का फल सत्य न्याय के अनुसार देगा। वहाँ सिफारिश अथवा पक्षपात का स्थान नहीं हैं। मनुष्य को सावधान रहकर उत्तम कर्मों द्वारा प्रगति करनी चाहिये। इसी में मनुष्य का कल्याण है।

अशनि का अर्थ विद्युत् भी है। जिस प्रकार मेघाच्छन्न अन्धकारमय आकाश में विद्युत् का प्रकाश होता है उसी प्रकार पाप कर्म की ओर झुकते हुए मनुष्य के अन्तःकरण में प्रभु का प्रकाश क्षणभर के लिए चमकता है। अन्दर से आवाज आती है—हे मनुष्य! यह बुरा काम है, इसे मत कर। मनुष्य उस प्रकाश का लाभ उठाकर पापकर्म से अपना बचाव करले तो उसका कल्याण होगा। यह अशनि = आकस्मिक क्षणिक प्रकाश-रेखा ही ईश्वर के बाण हैं जिनसे मनुष्य को सन्मार्ग—उन्नति के मार्ग की ओर चलने की प्रेरणा मिलती है।

सोम और सोम की देन के प्रति हमारा नमस्कार हो।

ओ३म् ध्रुवादिग् विष्णुरधिपतिः कल्माशग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्योऽस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तंवो जम्भे दध्मः॥

अथर्ववेद सू० २७। मं० १॥

(ध्रुवा दिग्) नीचे की दिशा का (अधिपतिः-विष्णुः) अधिनायक सर्वव्यापी परमेश्वर है। वह हमें (कल्माशग्रीवोः) पृथिवी के अन्तस्तल से चित्र-विचित्र ग्रीवाओं के साथ दर्शन देता है। (रक्षिता) वह हमारा रक्षक है। (वीरुधः) वनस्पति—वृक्ष, बाण, लताएँ (इषवः) हमारी रक्षा के निमित्त उसके पौदे हैं।

(तेभ्यो नमः)…अर्थ पूर्ववत्।

सामने, पीछे, दाहिने, बाएँ चारों ओर परमेश्वर के दर्शन किए। नीचे, पृथिवी के अन्तस्तलों में भी वह व्यापक है। पृथिवी के अन्तस्तलों में उसकी महिमा अद्भुत है। नीचे देखते हुए उपासक परमेश्वर के विष्णुरूप—व्यापकरूप को आश्चर्य के साथ अनुभव करता है। पृथिवी के अन्तस्तल से उठते हुए अनेक आकारों, अनेक वर्णों, गंधों, रसों के साथ चित्र-विचित्र वनस्पति ग्रीवारूप में उसकी अवर्णनीय महिमा का चमत्कार उपासक के अन्तःकरण में अङ्कित करते हैं।

(वीरुधः) ये वनस्पतियाँ ही, उसके बाण हैं जिनके द्वारा ध्रुवा दिशा में व्यापक परमेश्वर हम सब प्राणियों की रक्षा करता है।

विष्णु और उसकी अद्भुत देन को हमारा नमस्कार हो।

ओ३म् ऊर्ध्वादिग् बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रो रक्षिता वर्षमिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्योऽस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥

अथर्ववेद सू० २७। मं० ६॥

(ऊर्ध्वादिग्) ऊपर की दिशाका (बृहस्पतिः-अधिपतिः) बृहस्पति अधिनायक है। वह (श्वित्रः) शुभ ज्योतिस्वरूप (रक्षिता) हमारा रक्षक है। (वर्षम्) वर्षा (इषवः) हमारी रक्षा के निमित्त उसके बाण हैं।

(तेभ्यो नमः)···अर्थ पूर्ववत्।

सामने, पीछे, दाएँ, बाएँ और नीचे देखने के पश्चात् उपासक ऊपर की ओर देखता है। ऊपर बृहत्—महान् लोकों सूर्य, चन्द्र, ग्रह-नक्षत्र-मण्डलों के पति=स्वामी के रूप में परमेश्वर के दर्शन होते हैं। बृहस्पति परमेश्वर हमारा और इन चमत्कारी लोकों का अधिनायक है। सभी सौरमण्डलों, ग्रहों, नक्षत्रों, चन्द्र और पृथिवी लोकों का निरन्तर अचिन्तनीय तीव्र गति से संचालन करता हुआ इन में कहीं टाकड़ा नहीं आने देता। पृथिवी पर रहने वालों के लिए ये सब ग्रह, नक्षत्र, चन्द्र, सूर्य, शुभ्र आकर्षक ज्योति देने वाले हैं। इन सब बृहत्=महान् लोकों का पति=स्वामी, नियामक बृहस्पति रूप परमेश्वर है। उसी का श्वित्र=शुभ्र ज्योतिर्मय रूप सूर्य, चन्द्र, ग्रह-नक्षत्रों में प्रतिबिम्बित है जिससे हमें प्रकाश प्राप्त हो रहा है। प्रभु की यह श्वित्र=शुभ्र ज्योति ही हमारी रक्षक है। प्रकाश—ज्योति हमारा जीवन है। इसके बिना प्रगति हो नहीं सकती।

ऊपर अन्तरिक्ष से पृथिवीतल को सिंचित करते हुए वर्षाजल बृहस्पति के इषु=वाण हैं। श्वित्ररूप हमें ज्योति प्रदान करता है। वर्षाः रूपी इषु हमें प्राण दान करते हैं।

बृहस्पति और बृहस्पति की दिव्य देन को हमारा नमस्कार हो।

उपस्थान मन्त्र

ओ३म् उद्वयं तमसः परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्। देवं देवत्रासूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्॥

यजुर्वेद अ० ३५। मन्त्र १४॥

(वयं) हम सब उपासक (तमसः परि) स्वयं को अन्धकार से परे (उत्तरं) अनन्तर आने वाले (स्वः) आनन्द को (उत्पश्यन्तः) अनुभव करते हुए (देवत्रा देवं) देवों के देव (सूर्य) चराचर जगत् के प्राण (उत्तमं ज्योति) उत्तम ज्योति को (अगन्म) प्राप्त हों।

विश्वपति के विश्वरूपी मन्दिर के चारों ओर तथा ऊपर-नीचे मनसा परिक्रमा करने के पश्चात् उपासक स्वयं को विश्वपति के समीप, अत्यन्त समीप, गोद में बैठा हुआ अनुभव करता है। यहाँ अन्धकार नहीं। अन्धकार की सीमा के परे अद्भुत आनन्द का अनुभव है। देवों के देव की छत्रछाया हैं। वही देवों का देव सूर्य है—सर्वजगत् को प्रेरणा देने वाला है। चराचर का प्राण है। सर्वोत्तम ज्योति है। यहीं से विश्व में ज्योति का प्रसार होता है। इस उत्तम ज्योति में उपासक स्वयं को बैठा अनुभव करता है। इसलिए यह मन्त्र तथा आगे आने वाले कुछ मन्त्र उपस्थान मन्त्र कहाते हैं।

ओ३म् उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्यम्॥ यजुर्वेद अ० ३३। मन्त्र ३१॥

(त्यं) उस (जातवेदसं) समस्त सृष्टि के जानकार, सृष्टि में सर्वत्र पहुँचे हुए (देवं) देव (सूर्यं) चराचर जगत् के प्रकाशक तथा प्रेरणा देने वाले का (विश्वाय दृशे) पूर्ण रूप से दर्शन करने के लिए (केतवः) उसकी किरणें, विभूतियाँ (वहन्ति) प्रवाहित हो रही हैं।

उपासक की जहाँ दृष्टि पड़ती है वहीं उस विश्वपति की ज्योति की किरणें विभूतियों के रूप में दृष्टिगोचर होती हैं। यह सृष्टि रचकर विश्वपति उदासीन होकर नहीं बैठा। वह "जातवेदस" है। अपनी रचना की पूरी जानकारी रखता है।

विश्व में सर्वत्र पहुँचा हुआ है। वह "सूर्य" है। अपनी रचना—चराचर जगत् को प्राण देने वाला है। विश्वरचना में प्रगति का नियामक है। प्रत्येक ग्रह-नक्षत्र उसके नियम-चक्र में बँधा है। यह नियम-चक्र विश्व-नियन्ता द्वारा चलाया जा रहा है। उपासक विश्वपति के चरणों में बैठा सब ओर उसकी दिव्य विभूतियों के प्रवाह को देखकर आनन्दविभोर है।

ओ३म् चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्रा द्यावा पृथिवी अन्तरिक्षँ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा॥

यजुर्वेद अ० ७। मन्त्र ४२॥

(चित्रं) अद्भुत देव (देवानाम् अनीकं) सब देवों में शक्ति संचार करता हुआ (उदगात्) उपासक के सामने उदय हुआ है। वह अद्भुत देव (मित्रस्य वरुणस्याग्नेः) मित्र वरुण अग्नि इन सब का (चक्षुः) नेत्र है, मार्गदर्शक है, प्रकाशक है।

वह अद्भुत देव (द्यावाः पृथिवी अन्तरिक्षं) द्युलोक, पृथिवी लोक और अन्तरिक्ष लोक में (आप्रा) अन्दर-बाहर पहुँचा हुआ है।

वह (जगतः तस्थुषश्च) चर और अचर सभी का (आत्मा) आत्मा है, उनमें व्याप्त है। (सूर्य) चराचर जगत् का प्राण—प्रेरणा देने वाला है।

विश्व में चहुँ ओर विश्वपति की विभूतियों का दर्शन कर उपासक आनन्द में मग्न अपने सम्मुख (चित्रं) अद्भुत देव के दर्शन करता है। उपासक अनुभव करता है कि यही अद्भुत देव हम सब को तथा भौतिक देवों को (अनीकं) बल—शक्ति—तेज देने वाला है। यही अद्भुत देव मित्र, वरुण, अग्नि का चक्षु है।

मित्र का अर्थ सूर्य, प्राण और स्नेही बन्धु है। सूर्य का चक्षु=प्रकाशक अद्भुत देव परमेश्वर है। प्राणों में सञ्जीवनी शक्ति देने वाला वही है। स्नेही बन्धु में स्नेह भावना देने वाला भी वही सर्वमित्र परमेश्वर है।

वरुण जल का नाम है। जल में प्राणियों के लिए जीवनशक्ति देने वाला परमेश्वर है।

अग्नि भौतिक अग्नि तथा अग्रणी=अधिनायक का वाचक है। अग्नि में तेज और प्रकाश उस अद्भुत देव का है। अधिनायक में जननायक होने की शक्ति अद्भुत देव की देन है। राम, कृष्ण, शंकर, दयानन्द सभी ने ईश्वरीय ज्योति से ज्योति प्राप्त की।

यह चित्र अद्भुत देव मित्र वरुण अग्नि का चक्षु है। यह चित्र—अद्भुत देव द्युलोक, पृथिवी लोक और अन्तरिक्ष लोक में "आप्रा" सर्वत्र व्यापक है।

यही अद्भुत देव स्थावर और जङ्गम जगत् का आत्मा है। उसी के आधार पर इनको सत्ता दृष्टिगोचर हो रही है। यही इनके लिए सूर्य= प्रगति देने वाला प्रेरक और नियन्त्रण में रखने वाला अधिनायक है।

ओ३म् तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्तात् शुक्रमुच्चरत्। पश्येमशरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयामशरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्॥

(तत्) वह परमेश्वर (चक्षुः) हम सब का नेत्र है। (देवहितम्) सब दिव्यगुणधारियों का हित-कारी है। सब देवों में निहित है, व्याप्त है (शुक्रं) शुभ्र ज्योति है। (पुरस्तात्) उपासक के सामने (उच्चरत्) व्याप्त हो रहा है।

उपासक नतमस्तक होकर प्रार्थना करता है—

आपकी परम कृपा से (शरदः शतं पश्येम) सौ शरद् ऋतुएँ देखने की शक्ति हमारे अन्दर बनी रहे। (शरदः शतं जीवेम) सौ शरद् ऋतुएँ हमारे अन्दर जीवनशक्ति बनी रहे। (शरदः शतं शृणु-याम) सौ शरद् ऋतुएँ सुनने की शक्ति हमारे अन्दर बनी रहे। (शरदः शतं प्रब्रवाम) सौ शरद् ऋतुएँ बोलने की शक्ति हमारे अन्दर बनी रहे। (शरदः शतं अदीनाः स्याम) सौ शरद् ऋतुएँ हम अदीन बने रहें, हमारे अन्दर दीनता की भावना न आने पाये। (शरदः शतात् भूयश्च) सौ शरत् ऋतुओं से अधिक जीवित रहें तब भी हमारे अन्दर सब शक्तियाँ बनी रहें और दीनता की भावना न आने पावे।

प्रभु के चरणों में उपस्थित उपासक अनुभव

करता है कि वही उसका चक्षु है। प्रभु की आँखों से ही उपासक देखता है। प्रभु जिधर इशारा करता है उधर ही उपासक चल पड़ता है। सब देवों में, भौतिक देवों में, अपने अन्दर और बाहर प्रभु व्याप्त नजर आता है। प्रभु की शुभ्र ज्योति उसके सामने है। उपासक नतमस्तक होकर प्रार्थना करता है—हे नाथ! मैं जब तक जीवित रहूँ, सौ वर्ष या सौ से भी अधिक वर्ष तेरी ज्योति, तेरी शक्ति मेरी सब इन्द्रियों में बनी रहे। मैं तुझसे विमुख होकर स्वयं को दीन न बनने दूँ। तू शुक्र है। शुक्र की शरण में मेरा जीवन भी सदा तेरी शुभ्र ज्योति से ज्योतिर्मय बना रहे। दीनता—जीवन में अन्धकार मेरे अन्दर प्रवेश न करने पाये।

गायत्री मन्त्र

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥ यजुर्वेद ३३-३॥

(भूः) चराचर जगत् के प्राण, सत्यस्वरूप (भुवः) सकल कष्टों के निवारक, सर्वोत्कृष्ट (स्वः) सर्वव्यापी आनन्दस्वरूप परमेश्वर (सवितुः) सबके उत्पन्न करने, विश्व के रचनाकार (देवस्य) देव के (तम्) उस (वरेण्यं) सर्वश्रेष्ठ (भर्गः) शुद्ध शुभ्र ज्ञानस्वरूप का हम (धीमहि) ध्यान करते हैं। (यः) जो (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को (प्रचोदयात्) प्रेरणा देने वाला है।

गायत्री मन्त्र गुरुमन्त्र कहलाता है। यह चारों वेदों में है। 'भूः भुवः स्वः' ये तीन व्याहृतियाँ (विशेष वचन) कहलाती हैं। इन तीन पदों में प्रभु के विश्वरूप का बोध होता है।

(भूः) तुम सत् हो, सर्वत्र सत् हो, सदा सत् हो। किसी स्थान अथवा किसी समय में तुम्हारा अभाव नहीं। काल की कल्पना से परे हो। स्थान की अथवा सीमा की कल्पना से भी परे हो। सर्वदा सर्वत्र तुम विद्यमान हो। सबके प्राण हो।

(भुवः) तुम सत्-चित् हो। सर्वोत्कृष्ट हो। तुम्हारा ज्ञान निरतिशय है। तुम्हारी शक्ति निरतिशय हैं। तुम सबके कष्टों के निवारण करने वाले हो।

(स्वः) तुम सत्-चित्-आनन्द हो। सदा आनन्द हो। सदा एकरस हो। सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय दोनों में एकरस आनन्दरूप हो। सम्भूति और विनाश दोनो में एक रस सदानन्द हो।

इन व्याहृतियों के साथ गायत्री मन्त्र का आरम्भ होता है। इस मन्त्र में तीन पाद हैं अतः गाय-त्री कहलाता है।

प्रभु सविता है। सर्वविश्व का रचनाकार है। वह देव है। सब भौतिक देवों में, प्राणियों में=विद्वानों और सन्तों में उसकी दिव्य विभूति, ज्योति जगमगाती है। उपासक के लिए वह 'वरेण्य' है। जिसे हम वरकर स्वयं को उसके प्रति समर्पित कर दें वह वर है। वरों में सर्वश्रेष्ठ वर=वरेण्य हमारा सवितादेव है। वह 'भर्ग' है। शुद्ध है, शुभ्र है, अनन्त ज्योति है।

उपासक सविता देव के वरेण्य और भर्गरूप को देखकर स्वयं को उसके प्रति समर्पित कर देता है। प्रभ वरेण्य है, उससे श्रेष्ठ वर उपासक को मिल नहीं सकता। एक बार वरेण्य प्रभु के शरण में आने के बाद दूसरे शरण की तलाश करने की आवश्यकता नहीं रहती। प्रभु 'भर्ग'=शुद्ध, शुभ्र अनन्त ज्योति है शुद्ध, शुभ्र, अनन्त ज्योति के शरण में उपासक के सम्मुख सदा प्रकाश और आनन्द है।

(धीमहि) अब उपासक का एकमात्र ध्येय आराध्यदेव सविता देव है। उपासक उसी का ध्यान—एकमात्र उसी का ध्यान करने का संकल्प करता है।

वही सविता देव उपासक की (धियः) बुद्धियों को, विचारधारा को (प्रचोदयात्) प्रेरणा देने वाला है। जिधर वह देव ले जाये उधर उपासक को जाना है। वह वरेण्य वर है, उपासक उस पर मुग्ध है। उस वरेण्य में चुम्बकीय शक्ति है, उपासक खिचा जाता है। सदा उसी का ध्यान करता है। उसके आदेश का अनुसरण करता है।

गायत्री मन्त्र में प्रभु के प्रति स्वयं को समर्पित कर ध्यान में मग्न उपासक प्रार्थना करता है—

हे ईश्वर ! दयानिधे ! भवत्कृपया अनेन जपोपासनादि कर्मणा धर्मार्थकाममोक्षाणां सद्यः सिद्धिर्भवेन्नः ॥

हे (दयानिधे !) दया के भण्डार (ईश्वर) सब ऐश्वर्यों, विभूतियों के स्वामिन् (भवत् कृपया) आपके अनुग्रह से (अनेन) इस (जपोपासनादि कर्मणा) जप उपासना आदि समर्पणकारीकर्म के द्वारा (नः) हमें (धर्म-अर्थ-काम-मोक्षाणां) धर्म=आचरण, धर्म के द्वारा अर्थप्राप्ति, धर्म-अर्थ के साथ ऐहिक सुख और उसके अनन्तर मोक्ष के परमानन्द की (अद्यः) शीघ्र (सिद्धिः भवेत्) प्राप्ति होवे। नमस्कार मन्त्र

ओ३म् नमः शम्भवाय च मयोभवाय च । नमः शंकराय च मयस्कराय च । नमः शिवाय च शिवतराय च ॥

(शम्भवाय च नमः) शम्भु=शान्तिस्वरूप परमेश्वर के लिए हमारा नमस्कार हो। (मयोभवाय च) आनन्दस्वरूप परमेश्वर के लिए हमारा नमस्कार हो। (शंकराय च नमः) कल्याणकारी शान्तिदायक परमेश्वर के लिए हमारा नमस्कार हो। (मयस्कराय च) आनन्ददायक परमेश्वर के लिए हमारा नमस्कार हो। (शिवाय च नमः) मङ्गलमय परमेश्वर के लिए हमारा नमस्कार हो। (शिवतराय च) शिव-सागर परमेश्वर के लिए हमारा नमस्कार हो।

गायत्री मन्त्र में पूर्णरूप से परमेश्वर के प्रति स्वयं को समर्पित करता हुआ उपासक अपने चहुँ ओर परमेश्वर के आनन्दमय शान्तस्वरूप का दर्शन करता है। उसके चरणों में नतमस्तक होकर स्वयं को शान्त आनन्दमय वातावरण में अनुभव करता है। ओ३म् शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!!

हमारी प्रकाशित प्रसारित पुस्तकें

महात्मा आनन्द स्वामी कृत

तत्त्वज्ञान	४-००
प्रभुदर्शन	२-५०
प्रभुभक्ति	१-५०
आनन्द गायत्री कथा	१-००
एक ही रास्ता	१-००
शंकर और दयानन्द	०-७५
सत्यनारायण व्रत कथा	०-७५
भक्त और भगवान्	१-००
मानव जीवन गाथा	१-००
उपनिषदों का सन्देश	१-५०
घोर घने जङ्गल में	२-५०
महामन्त्र	१-२५
सुखी गृहस्थ	१-००
बोध कथाएं	३-५०
मानव और मानवता	४-५०
प्रभु मिलन की राह	३-५०

प्रो० नित्यानन्द वेदालंकार कृत

पूर्व और पश्चिम	७-५०
जीवन की राहें	४-००
प्रार्थना दीप	२-००
सन्ध्या विनय	१-५०
सु-राज्य की रूपरेखा	०-५०

ब्र० जगदीश विद्यार्थी कृत

दयानन्द सूक्ति और सुभाषित	४-००
विद्यार्थी लेखावली	३-००
वैदिक प्रश्नोत्तरी	२-००
वेद सौरभ	२-००
वैदिक उदात्त भावनाएँ	२-००
ईशोपनिषद्	२-००
कुछ करो कुछ बनो	२-००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	१-५०
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	१-५०
दिव्य दयानन्द	१-२५
प्रार्थना प्रकाश	१-२५
प्रभात वन्दन	१-२५
हास्य विनोद	१-००

ऋग्वेद शतकम्	१-००
अथर्ववेद शतकम्	१-००
यजुर्वेद शतकम्	१-००
सामवेद शतकम्	१-००

पं० भगवद्दत्त कृत

भारतीय संस्कृति का इतिहास	६-००
आर्य राजनीति के मूल तत्त्व	०-३०

महर्षि दयानन्द कृत

उपदेश मंजरी	२-५०
आत्मकथा	०-४०
स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश	०-१०
वेदान्तिध्वान्त निवारण	०-२०
वेदविरुद्ध मत खण्डन	०-३७
शिक्षापत्रीध्वान्तनिवारण	०-३७
आर्याभिविनय	०-७५
आर्योद्देश्यरत्नमाला	०-१५
ऋग्वेदभाष्य का प्रथम सूक्त	०-२५
भ्रान्ति निवारण	०-३७
व्यवहारभानु	०-३०
भ्रमोच्छेदन	०-२५
गोकरुणानिधि	०-२०
गृहस्थाश्रम	०-६२
काशी शास्त्रार्थ	०-२०
सत्यधर्म विचार	०-२५
आर्यसमाज के नियमोपनियम	०-१०
ईशोपनिषद्	०-२५
बालशिक्षक	०-३७

पं० रामचन्द्र देहलवी कृत

देहलवी लेखावली	३-५०
ईश्वर ने दुनिया क्यों बनाई ?	०-४०

महात्मा नारायण स्वामी कृत

आर्य समाज क्या है	०-७५
वैदिक यज्ञ रहस्य	०-३७

पं० आर्य मुनि कृत

ईश-उपनिषद्	०-४०
मुण्डक ,,	०-६२
केन ,,	०-५०
माण्डूक्य ,,	०-३१
ऐतरेय उपनिषद्	०-५०
तैत्तिरीय ,,	१-२५

प्रो० सुरेशचन्द वेदालंकार कृत

मन की अपार शक्ति	१-२५
आकर्षक व्यक्तित्व कैसे बने ?	१-५०

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय कृत

विवाह और विवाहित जीवन	२-५०

पं० रामगोपाल विद्यालंकार

दयानन्द चित्रावली	२-५०

स्वामी ब्रह्ममुनि कृत

बृहदारण्यक उपनिषद् कथा	३-००

पं० भीमसेन कृत

श्वेताश्वतर उपनिषद्	१-००

स्वामी अच्युतानन्द

व्याख्यानमाला	२-५०

पं० विश्वनाथ विद्यालंकार

बाल ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका	०-७५

पं० हरिश्चन्द्र विद्यालंकार

वैदिक शिष्टाचार	०-३०

त्रिलोकचन्द विशारद

महर्षि दयानन्द	१-००
स्वामी श्रद्धानन्द	१-००
गुरु विरजानन्द	०-५०

पं० मदनमोहन विद्यासागर

आर्य सिद्धान्तदीप	१-२५

स्वामी वेदानन्द

वेदपरिचय	०-३७
स्वाध्याय संग्रह	३-००

स्वामी श्रद्धानन्द कृत

हिन्दु संगठन	१-००

पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

गोरक्षा परम कर्तव्य	०-५०

पं० अत्रिदेव विद्यालंकार

स्त्रियों का स्वास्थ्य और रोग	३-००

पं० चमूपति एम० ए०

जीवन ज्योति	४-००

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली-६

THE ONLY WAY

Mahatma Anand Swami Saraswati

12 Pt. Type

Neatly Printed

Bound Edition

Rs. 2-50

महात्मा जी की "एक ही रास्ता" पुस्तक का इंगलिश अनुवाद

महात्मा आनन्द स्वामी जी

कृत नई पुस्तक

मानव और मानवता

छपकर तैयार हो गई

मूल्य साढ़े चार रुपये

पं० राजेन्द्रजी की पुस्तकें

भारत में मूर्तिपूजा	३.००
सनातन धर्म	२.७५
गीता विमर्श	०.७५
तीन महापातक	०.५०
शुद्धगीता	०.२५
गीता की पृष्ठभूमि	०.४०
आर्यसमाज का नवनिर्माण	०.१२
शंकर मायावाद	०.१५

श्रीमद्दयानन्द प्रकाश

[लेखक—श्रीस्वामी सत्यानन्द जी महाराज]

महर्षि दयानन्द का सर्वाधिक लोकप्रिय, प्रामाणिक एकमात्र जीवन-चरित।

स्वामी सत्यानन्द जी ने पाँच वर्ष तक सारे भारत में भ्रमण करके इसकी ऐतिहासिक सामग्री एकत्र की थी।

इस जीवनी को लगभग सभी गुरुकुलों के पाठ्यक्रम में पढ़ाया जाता है। पुस्तक इतनी लालित्यपूर्ण श्रद्धामयी भाषा में लिखा गई है कि पाठक पढ़ते-पढ़ते भावमुग्ध हो जाता है और महर्षि के चरणों में नतमस्तक हो जाता है।

१६ प्वाईंट का मोटा टाइप, बढ़िया ३२ पौंड का मोटा कागज, मोती-सी छपाई, कपड़े की जिल्द, आकर्षक आवरण। उपहार और भेंट देने के लिए अनुपम वस्तु। मूल्य केवल बारह रुपये।

धार्मिक चित्र और फोटो आदि

महर्षि दयानन्द रंगीन		१.२५
साइज़ २०×३०		
स्वामी श्रद्धानन्द	,,	१.००
पं० लेखराम	,,	१.००
स्वामी दर्शनानन्द	,,	१.००
पं० गुरुदत्त	,,	१.००
साइज़ १८×२२		
महर्षि दयानन्द	,,	०.७५
गुरु विरजानन्द	,,	०.७५
स्वामी श्रद्धानन्द	,,	०.७५
पं० लेखराम	,,	०.७५
साइज़ १५×२०		
ला० लाजपतराय		०.५०
स्वामी दयानन्द	,,	०.५०

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सडक, दिल्ली-६

मुद्रक, प्रकाशक, विजयकुमार ने सम्पादित कर बदलिया प्रिंटिंग प्रेस, दाईवाड़ा दिल्ली में मुद्रित कर वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली से प्रकाशित किया।



वेदप्रकाश

वेदोऽखिलो धर्म-मूलम्

संयम क्यों ?

हम सत्य ही कहते रहे कि प्राचीन काल में भारत का धर्म, संस्कृति, प्रथा विश्व-भर में फैलती रही है।

विगत फरवरी को मालूम हुआ कि जब अमरिका के आदिम निवासियों को उनका नामकरण करके 'भारतीय' कहा गया भूल न हुई। ब्रजिल के 'भारतीयों' के यहाँ एक घास है जिसे काम में लानेवाली देवियाँ ३ साल निस्सन्तान रहती हैं।

भारतीयों की ही भाँति वे वनौषधि को महत्त्व देते हैं। क्योंकि हजारों वर्ष से सम्बन्ध-विच्छेद हो गये। भारतीय ज्ञान से वे बेचारे वंचित रहे।

यदि वे याद कर पाते कि भारतीय धर्म ब्रह्मचर्य का पालन करने के हक में है तो वे ब्रह्मचारी या ब्रह्मचारिणी रहना पसन्द करते। उनके यहाँ ब्रह्मचर्य महत्त्वपूर्ण न रहा यद्यपि लोग इसे महत्त्वहीन नहीं मानते।

सब बड़े धर्म ईश्वर-सत्ता में विश्वास करते हैं। उन सबके अनुयायी प्रार्थना करते हैं। इतना फिर भी कहना पड़ता है कि ब्रह्मचर्य पर भारतीय धर्म ही ने बल दिया है। जो ब्रह्म में विचरण करता है उसे ब्रह्मचारी नाम से पुकारा जाता है।

भारत ने संयम को अत्यावश्यक बताया है। संयम से रहित मनुष्य पशु बन जाता है।

ब्रजिल की चर्चा न होती यदि आजकल सन्तान-निरोध की चर्चा जोरों पर न होती। पश्चिमीय ढंग से निरोध करना हानिकारक है। शरीर के किसी भी अंग का स्पर्श न करके घास से काम लिया जाय तो कम खतरे होंगे।

घास से काम लेने वालों को भी संयम का महत्त्व भूलना नहीं चाहिए। महात्मा गांधी कभी संयमी बनने को हमें कहते थे तो कभी मद्य-निषेध करवाकर ही दम लिया करते थे। वे सच्चे भारतीय थे।

छान्दोग्योपनिषद् में मद्यपान को कुकर्म कहा गया है। मानव-धर्मशास्त्र में बताया गया है कि राक्षस और पिशाचों के अन्न-भोजन मद्य, सुरा और आसव हैं।

भारत ही ने बताया कि दूध अमृत है। ब्रजिल के 'भारतीयों' के यहाँ एक वृक्ष है जो ऐसे रस से भरा है जिसे पीकर मनुष्य उसी तरह तृप्त होता है जिस तरह दूधपान करने से हुआ करता है। भारतीय और अभारतीय—दोनों ने माना है कि

दूध आदर्श भोजन है। उसे छोड़कर शराब ग्रहण करना पतन की ओर जाना है। कॉकटेल के इस जमाने में दूध का महत्त्व घटता जा रहा है। ऐसे लोगों की संख्या न्यून नहीं है जो मानते हैं कि दूध केवल बच्चों के लिए है। बापू जो ३२-वर्षीय बैरिस्टर थे जब मॉरीशस आये थे। उन्हें दूध से बनाया पोरिज खिलाया गया।

मद्यनिषेध, संयम, ब्रह्मचर्य ही मानव को बचाये रख सकता है। आमदनी बढ़ाने के विचार से प्रायः सभी देश सैलानियों का स्वागत करते हैं। पर्यटक पधारें और मनोहर प्राकृतिक दृश्यों से मुग्ध हों तो किसी प्रकार की हानि न होगी। उनकी 'आवश्यकताओं' की पूर्ति के लिए पापाचार को जान-बूझकर बढ़ाना नहीं चाहिए।

नैतिक पतन लाकर जनसंख्या घटा भी दी जाय तो मानव-समाज का कल्याण न होगा। ऋषियों ने हमें संयमी बनने का जो उपदेश दिया है उसे कभी भी भूलना नहीं चाहिए। संयमी अपने शरीर को मन्दिर-सा पवित्र रखते हैं। उनमें शारीरिक बल के साथ-साथ आत्मिक बल होता है। संयमी रोगों का शिकार नहीं बनता। उसे शान्ति प्राप्त होती है।

सेंटर पेरे नामक फ्रेञ्च ने क्या ही ठीक कहा कि ब्रजिल के 'भारतीयों' को पश्चिमीय शिक्षा देने के योग्य नहीं है।

बा० विष्णुदयाल

'वेदप्रकाश पर सम्मति'

आदरणीय श्री वैद्य नारायणदत्तजी,

सादर नमस्ते।

आशा है परमात्मा की कृपा से आप सपरिवार कुशलपूर्वक होंगे। जून मास के १९७० के वेद प्रकाश के अंक में 'सन्ध्या' पर आपका भाष्य एवं विवेचन पढ़ा। अत्यन्त प्रसन्नता हुई। आपने यह अभी लिखा है या पहले ही लिखा था और पहले कभी छपा था यह तो मुझे ज्ञात न हो सका, तथापि एक विशेष उलझन जो आर्य विद्वानों से सुलझी नहीं थी और उसका तोड़-मरोड़कर अर्थ करते थे फिर भी सन्तोष नहीं होता था, वह आपने सरलता से सुलझाकर रख दी है। वह है प्रथम नमस्कार क्रिया मनसा परिक्रमा में दिशाओं के लिये। इससे आगे के नमः क्रमशः संगत हैं ही। मैंने भी लगभग डेढ़ वर्ष पूर्व इसी प्रकार (१) दिशा, (२) दिशाधिपति, (३) रक्षक शक्ति और (४) बाणों के लिये नमः लिखा है। परन्तु 'एभ्यो अस्तु'—अभी स्पष्ट आपने नहीं किया है। वे सब तेभ्यः थे और एभ्यः वे कैसे कहलाये या एभ्यः से किसी और की ओर संकेत है? इसे भी और स्पष्ट करना होगा। वह भी लोगों की उलझन सुलझनी चाहिये।

आपके इस सन्ध्या के शुभ प्रयास के लिये हार्दिक धन्यवाद।

आपका—

वीरसेन वेदश्रमी

(पृष्ठ ५ का शेष)

हो जाता है। शत्रु मित्र हो जाता है। इसका कारण है मनुष्य की अविद्या। 'योगदर्शन' में कहा है:—

"अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषाम्"

अर्थात् अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश इन पाँच प्रकार के क्लेशों का क्षेत्र तो अविद्या ही है। इसी अविद्या के कारण हम वहाँ शान्ति खोजते हैं जहाँ शान्ति नहीं। जो मनुष्य समझता है कि शराब पीने से मेरे मन की अशान्ति दूर हो जायगी वह अपनी अशान्ति को बढ़ाता है कम नहीं करता। हम नित्यप्रति नाना प्रकार के विषयों में फँसे रहते हैं। कभी-कभी तो स्वयं इन विषयों को निमंत्रण देते हैं, यह समझकर कि यह विषय विष को दूर करेंगे। हम नहीं जानते कि विषय ही विष है और हमारी दुर्भावनाओं से उत्पन्न होते हैं। फारसी के एक कवि का कथन है 'बादा अज़ मा मस्तशुद नै मा अज़ो" अर्थात् "हम शराब को नशेवाली बनाते हैं, शराब हमको नशेबाज़ नहीं बनाती"। यह एक गहरी सच्चाई है। ○

वर्ष १९ अङ्क २ | संस्थापक—गोविन्दराम हासानन्द | भाद्रपद २०२७, सितम्बर १९७० | वार्षिक मूल्य ३-००

सम्पादक : विजयकुमार | आदरी सम्पादक : ब्र० जगदीश विद्यार्थी

वेद-प्रवचन

★स्व० गंगा प्रसाद उपाध्याय

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षँ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्मशान्तिः सर्वँशान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सामा शान्तिरेधि।

(यजुर्वेद अध्याय ३६, मंत्र १७)

अन्वय : द्यौः शान्तिः (अस्ति)। अन्तरिक्षं शान्तिः (अस्ति)। पृथिवी शान्तिः (अस्ति)। आपः शान्तिः (सन्ति)। ओषधयः शान्तिः (सन्ति)। वनस्पतयः शान्तिः (सन्ति)। विश्वेदेवाः शान्तिः (सन्ति)। ब्रह्मशान्तिः (अस्ति)। सर्वशान्तिः (अस्ति) शान्तिः एव शान्तिः (अस्ति)। सा शान्तिः मा (माम्) एधि (अस्तु)।

अर्थ : द्यौ लोक शान्तियुक्त अर्थात् शान्त है। अन्तरिक्ष लोक शान्तियुक्त है। पृथ्वी शान्तियुक्त है। जल शान्तियुक्त है। औषधियाँ शान्तियुक्त हैं। वनस्पति शान्तियुक्त है। (विश्वेदेवाः) अर्थात् सब दिव्यपदार्थ शान्तियुक्त हैं। (ब्रह्म) अर्थात् वेद-विद्या शान्तियुक्त है। सब-कुछ शान्तियुक्त है। शान्ति की भावना स्वयं शान्तियुक्त है। यह दस चीजें शान्ति वाली हैं। जो शान्ति इन दस वस्तुओं को ठीक स्थिति में रख रही है वही शान्ति मुझ ग्यारहवें अर्थात् ईश्वर की स्तुति करने वाले को प्राप्त हो।

व्याख्या—इस वेदमंत्र में 'शान्ति' के महत्त्व और मनुष्य-जीवन में शान्ति की उपयोगिता का वर्णन है।

'शान्ति' और 'क्रान्ति' दो शब्द आजकल की लौकिक भाषा में बहुत प्रचलित हैं, परन्तु लोग इन दोनों का गलत अर्थ समझते हैं। शान्ति का अर्थ समझा जाता है हलचल या प्रगतिशीलता का अभाव! राजपूताने में जब कोई बड़ा पुरुष मर जाता है तो 'मृत्यु' के अनिष्ट शब्द का प्रयोग करना अशिष्ट समझा जाता है। कहते हैं "अमुक पुरुष शान्त हो गया।" अर्थात् जीवन की समाप्ति या मृत्यु का नाम ही शान्ति है। यदि शान्ति मृत्यु का ही नाम है तो कौन चाहेगा कि मुझे शान्ति मिले? ऐसी शान्ति तो बड़े नगरों के बूचड़खानों में हर प्रातःकाल लाखों बकरे-बकरियों को प्राप्त हो जाती है।

इसी प्रकार 'क्रान्ति' शान्ति का विलोम समझी जाती है, अर्थात् किसी वस्तु को उसकी वर्तमान परिस्थिति को तोड़-फोड़कर उससे भिन्न बना देना। जब कोई चीज़ अपनी व्यवस्था को खोकर अस्त-व्यस्त हो जाती है तो इस आमूल बिगाड़ का नाम 'क्रान्ति' समझा जाता है। कहते हैं हिटलर ने यूरोप में क्रान्ति मचा दी, परन्तु ये दोनों शब्द वैदिक शास्त्रों में सर्वथा इतर अर्थों में प्रयुक्त हुए

हैं। हम यहाँ इस मंत्र की व्याख्या इसीलिये कर रहे हैं कि एक बहुत बड़ा भ्रम दूर हो जाय और शान्ति तथा क्रान्ति दोनों जो कुभावनाओं के कीचड़ में पड़ी हुई हैं वे अपने कल्पित मल को त्यागकर शुद्ध और पवित्र हो जायँ और मानव-जीवन के उन्नत और प्रशस्त बनाने में सहायक हो सकें।

'शमु' धातु से 'क्तिन्' प्रत्यय लगाकर स्त्रीलिंग 'शान्ति' शब्द सिद्ध होता है। इसी प्रकार 'क्रमु' का क्तिन्-प्रत्ययान्त 'क्रान्ति' शब्द है। 'शमु' (शम्) का अर्थ है 'उपशम' या समन्वित होना (to harmonize)। 'क्रमु' (क्रम्) का अर्थ है "पादविक्षेप" या आगे बढ़ना (to put the foot forward or to progress)। इस प्रकार संस्कृत व्याकरण के अनुसार न तो शान्ति का अर्थ प्रगतिशून्यता है न 'क्रान्ति' का अर्थ तोड़-फोड़कर किसी चीज को अस्त-व्यस्त करना है।

ऊपर के वेदमंत्र में ११ वाक्य हैं। यह अलग-अलग हैं। हर एक वाक्य अपने में पूर्ण है। अपने अर्थों की पूर्ति के लिये किसी अन्य की आकांक्षा नहीं रखता। पहला वाक्य है "द्यौः शान्तिः"। यहाँ 'द्यौः' उद्देश्य है। 'शान्तिः' विधेय है। क्रिया 'अस्ति' लुप्त है। जब कहते हैं कि "देवदत्तः ब्राह्मणः" तो इसका अर्थ होता है "देवदत्तः ब्राह्मणः अस्ति।" अस्ति या भवति विधेय का मुख्य अंग समझे जाते हैं। यह हमेशा लट् लकार में आते हैं। अंगरेजी में इसको कोप्युला (copula) कहते हैं। "अग्निः उष्णः" 'जलं शीतं' यहाँ भी 'अस्ति' क्रिया लुप्त है। द्यौ की ओर थोड़ा-सा भी विचार किया जाता है तो ज्ञात होगा कि 'द्यौः लोक' में पूर्ण शान्ति (harmony) विद्यमान है। द्यौ लोक में शान्ति का 'अभाव' नहीं कि जिसके कहीं से लाने के लिये प्रार्थना की जावे। इसी प्रकार आप अन्तरिक्ष आदि दसों पदार्थों का निरीक्षण करते जाइये, सब में शान्ति के दर्शन होंगे। तो फिर क्या कोई ऐसा स्थान है जहाँ शान्ति न हो और शान्ति की आवश्यकता हो ? हाँ। वेदमंत्र का ११वाँ भाग एक ऐसा वाक्य है जो स्वयं अपने में परिपूर्ण नहीं। उसकी पूर्ति के लिये दूसरे वाक्यों की आवश्यकता है। इस वाक्य में दो शब्द हैं। एक 'सा' (वह)। 'सा' शब्द को सुनते ही श्रोता के मन में यह प्रश्न उठता है "का ?" (कौन-सी)। यदि 'का' का उत्तर 'या' (जो) में न दिया जाय तो 'सा' का प्रयोग निरर्थक हो जाता है। यदि आप कहें कि आप हमको वह चीज ला दीजिये तो आप झट पूछेंगे 'कौन-सी चीज ?" जब तक "कौन सी" का निराकरण न हो 'वही चीज' का कोई अर्थ नहीं निकलता। इसलिये यह मानना पड़ेगा कि वेदमंत्र के अन्तिम अर्थात् ११वें भाग को पूरा समझाने के लिये अन्य वाक्यों की आकांक्षा रहती है। जब तक एकवाक्यता न हो, अर्थ समझ में नहीं आ सकता।

जो मनुष्य ईश्वर से इस मंत्र द्वारा प्रार्थना करता है वह स्वयं अनुभव करता है कि उसका मन शान्त नहीं है। चारों ओर से चिल्ल-पुकार मचती है कि संसार अशान्ति का घर है। जिधर देखो अशान्ति की आग लगी हुई है। दुःखी प्राणी चिल्ला रहा है कि 'शान्ति मिले, शान्ति मिले।' सांख्य-सूत्रों में कपिल महामुनि ने तो यहीं से आरंभ किया :—

अथ त्रिविध दुःखात्यन्त निवृत्तिरत्यन्त पुरुषार्थः

अर्थात् मनुष्य के जीवन का उद्देश्य (पुरुष+अर्थ) ही यह है कि तीन प्रकार के दुःखों की अत्यन्त अर्थात् जहाँ तक संभव है निवृत्ति हो जाय। तीन प्रकार के दुःख क्या हैं ? आध्यात्मिक दुःख जो हमारे भीतर से उपजते हैं जैसे क्रोध, मोह, लोभ, शंका, भ्रांति, व्याधि आदि। दूसरे आधिदैविक, जो जगत् के जड़ पदार्थों द्वारा प्राप्त होते हैं जैसे आग लग जाना। अति वर्षा होना। भूकम्प आ जाना, ओला या पाला गिर जाना। तीसरे आधि-भौतिक अर्थात् वे दुःख जो हमको दूसरे मनुष्यों या दूसरे प्राणियों से मिलते हैं। चोर हमारा माल चुरा ले जाता है। डाकू हमको मारने का यत्न

करता है। हमारा पुत्र हमसे बगावत करता है। शेर-चीते हमको खाने के लिए उद्यत रहते हैं। चूहे हमारे खेतों की फसलें खा जाते हैं। इन तीनों प्रकार के तापों से संतप्त होकर मनुष्य चिल्लाने लगता है "ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः" अर्थात् हे प्रभो, हमको तीनों प्रकार के तापों से छुड़ाकर शान्ति दिलाइये।

परन्तु इस वेदमंत्र में एक विशेष सत्यता का वर्णन है। वह यह कि यद्यपि स्थूल रूप से तीन तापों का उल्लेख है परन्तु अन्ततोगत्वा यह केवल एक ही ताप के भिन्न-भिन्न रूप हैं अर्थात् आध्यात्मिक ताप के। यदि आपके भीतर से ताप नहीं उठता तो कोई अन्य ताप है ही नहीं जो आपको सता सके। एक मोटा-सा उदाहरण लीजिये। घोर शीतकाल में जब कि थर्मामीटर का पारा शून्य से भी नीचे गिर जाय, आप एक स्वस्थ मनुष्य का तापमान (temperature) लीजिये। लगभग ९८'५ मिलेगा। और सब वस्तुयें ३२ या ३१ अंश का ताप बताती हैं परन्तु स्वस्थ मनुष्य का ताप ९८'५ है। रजाई ठण्डी है। जब वह उसे ओढ़ लेता है तो रजाई गर्म हो जाती है। ठण्डे पानी से हाथ धोइये और मल-मलकर धोइये। आपको प्रतीत होगा कि जल कुछ-कुछ गर्म होने लगा है। अब आइये गर्म ऋतु में। ज्येष्ठ मास की गर्मी पड़ रही है। आप भूमध्य-रेखा के किसी अफ्रीका जैसे देश में दोपहर की धूप में खड़े हुए हैं। चारों ओर से आग बरसती है। थर्मामीटर में देखने से वातावरण का तापमान ११५ या १२० डिग्री तक पहुँच रहा है। परन्तु यदि आप स्वस्थ हैं तो आपका तापमान वही ९८'५ निकलेगा। यह दृष्टान्त स्पष्टतया घोषित करता है कि वास्तविक ताप तो आध्यात्मिक ही है, इसलिये सबसे पहले आध्यात्मिक शान्ति के लिये यत्न करना चाहिये। वेदमंत्र में भी यही प्रार्थना की गई है "सा मा शान्तिरेधि"।

तो क्या द्यौः आदि में शान्ति है? अवश्य। पूर्ण रीति से 'शान्ति' का अर्थ है "समन्वित" होना। जिन अवयवों से अवयवी बना है उन अवयवों में वह विशेष समन्वय होना चाहिये जिसके ऊपर उस वस्तु का आधार है। अब आप द्यौलोक पर दृष्टि डालिये। 'द्यौः' एक चीज़ का तो नाम नहीं। अनेक आसमान लोक-लोकान्तरों का सामूहिक नाम है द्यौः लोक। यह लोक-लोकान्तर अपनी अपनी धुरियों पर और अपने-अपने मार्ग में घूमते हैं। कभी-कभी ज्योतिषियों को सूक्ष्म यंत्रों द्वारा देखने से ऐसा लगता है मानो अमुक दो तारे टकरा जावेंगे। जैसे कभी-कभी आप रेल के स्टेशन पर खड़े होकर दो आती हुई रेलगाड़ियों को देखें। परन्तु सुव्यवस्थित प्रबन्ध के कारण दो ट्रेनें बाल-बाल बच जाती हैं। इसी प्रकार द्यौलोक के भिन्न-भिन्न तारे समीप आकर भी दायें-बायें निकल जाते हैं। इसका नाम है शान्ति। यह पृथिवी आदि में भी पाई जाती है। एक संतरा लीजिये। उसमें खट्टे-मिट्ठे नमकीन कई प्रकार के पदार्थ हैं। परन्तु उनको ऐसे अनुपात से मिलाया गया है कि वे एक विशेष स्वाद देते हैं। यही हाल जल का है। ऑक्सीजन और हाइड्रोजन मिलाकर जल बनाते हैं। कभी उनमें लड़ाई नहीं होती। पानी भाप बन जाय फिर भी वही अनुपात। बर्फ बन जाय फिर भी वही अनुपात। कितना समन्वय है? हारमोनियम बाजे को तो आप सब जानते हैं। सातों स्वर भिन्न होते हुए भी ऐसे मिलते हैं कि अनेक राग-रागनियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। आप वेदमंत्र में दी हुई दसों कोटियों पर विचार कर जाइये। आपको समझने-समझाने के लिये उपमायें और दृष्टान्त भी मिल जायेंगे। वनस्पतियाँ, औषधियाँ, संसार के सभी पदार्थ ब्रह्म या वेद-विद्या से लेकर शान्ति की भावना तक सभी अपने-अपने अनुपात में ठीक हैं। हाँ, अशान्ति के लिये केवल एक ही-स्थान है, वह है मनुष्य का मस्तिष्क। यह बड़ा विचित्र और दुस्साध्य है। "विचित्ररूपा खलु चित्तवृत्तयः"। मधु में विष मिला देना मनुष्य के मन का काम है। मीठी चीज कड़वी लगने लगती है। सुन्दर वस्तु कुरूप प्रतीत होती है। मित्र शत्रु

(शेष पृष्ठ २ पर)

यज्ञ द्वारा लोक कल्याण

लेखक—श्री ज्योतिस्वरूप आचार्य, आर्ष गुरुकुल एटा, (उत्तर प्रदेश)

करुणा वरुणालय जगन्नियन्ता यज्ञमय प्रभु ने प्राणिमात्र का कल्याण करने के लिए यह सृष्टि-रूप एक महान् यज्ञ रचाया हुआ है मानो वे देवों के देव महादेव स्वयं होता बने हुए वृष्टि के द्वारा हम प्राणियों के लिये अन्न-जल-वायु आदि नाना पदार्थ आहुत कर रहे हैं। श्वास-प्रश्वास के ग्रहण-त्याग से एक क्षण भी हम विराम नहीं पा सकते; अन्न-जल का ग्रहण और विकृत रूप में त्याग अत्यावश्यक ही प्रतीत होता है। प्रभात होते ही पूर्व दिशा से निकलकर सूर्यदेव अपनी चतुर्दिक् व्याप्त होने वाली मरीचियों के द्वारा मानो स्वर्ण की वर्षा करते हुए और पृथिवी से रस (जल) का अपहरण करते हुए सायंकाल अस्ताचल को चले जाते हैं, फिर रात्रि में चन्द्रदेव द्वारा हमारे लिये आदान-प्रदान होता है। यह पृथिवी माता मल-मूत्रादि ग्रहण करके भी अनेक प्रकार के अन्न-फलादि पदार्थ देकर हमें जीवन प्रदान करती है। इसी भाँति जल-अग्नि-वायु उस यज्ञमय सर्वहुत प्रभु के इक्षण से अपने-अपने कर्म में रत हैं।

"ओ३म् तस्माद्य ज्ञात्सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम्"
(यजु० अ० ३१-६)

निरन्तर चल रहे इस यज्ञ को जहाँ हम प्रकृति में प्रत्यक्ष देखते हैं वहाँ वेदों में भी इसका अतीव स्पष्ट निर्देश करते हुए सर्वज्ञानमय परमात्मा मानव-मात्र के लिए आदेश देते हैं। "ओ३म् अग्नि दूतं पुरोदधे हव्यवाहमुपब्रुवे देवां आसादि यादिह" (यजुः अ० २२-१७) ऐ मनुष्यो ! हव्य को देवों तक पहुँचाने वाले सर्वतः प्रधान अग्नि को दूत-रूप में स्थापित करता हूँ; यह अग्नि उस अग्निहोत्र कर्म में पवन, वर्षा तथा जल की शुद्धि से इस संसार में श्रेष्ठ गुणों को धारण कराता है, ऐसा मैं तुम्हारे लिये उपदेश करता हूँ।

मनुज देह से अशुद्ध वायु-पसीना-मल-मूत्र आदि निकलते रहने के कारण वायुमण्डल दूषित होता रहता है, इसके अतिरिक्त मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नाना प्रकार के पदार्थों तथा, भाप आदि के यन्त्रों से वायु-जल में विकृति उत्पन्न करता रहता है, जिससे अनेक रोगों की वृद्धि होती है। वह दूषित जल सूर्य के द्वारा आहरण होकर फिर वर्षा-रूप में हमें प्राप्त होता है। यज्ञ करने से वायु हल्की होकर ऊपर उठती है; वायु की गति में तीव्रता आ जाती है; इस कारण पहली अशुद्ध वायु बाहिर निकल जाती है और उसके स्थान पर बाहिर की शुद्ध वायु प्रवेश करती है। अग्नि में भेद-शक्ति होने के कारण इसमें डाला हुआ घृत तथा अनेक प्रकार की औषध मिष्ट पदार्थ छिन्न-भिन्न होकर सूक्ष्म रूप में वायु के साथ दूर-दूर पहुँच जाते हैं। हमारी नासिका के द्वारा यह विज्ञान सदैव प्रत्यक्ष होता रहता है। अग्नि में मिर्च डालने से या दुर्गन्धियुक्त पदार्थ जलाने से दूर से भी उसकी गन्ध आती है और सुगन्धयुक्त पदार्थ जलाने से सुगन्ध आती है। अग्नि-प्रक्षिप्त घृतादि पदार्थ से या द्रव्य-त्याग से जहाँ हमें सुगन्ध प्राप्त होती है, वायु शुद्ध होती है, वहाँ अनेक प्रकार के रोग दूर हो जाते हैं। भगवान् ने राजयक्ष्मा जैसे नाम लेने मात्र से ही भयावने रोग के लिए इस यज्ञ का आदेश दिया है। "मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कम ज्ञान यक्ष्मादुत राजयक्ष्मात्" (अथर्व ३-११-१) "न तं यक्ष्मा आरुन्धते नैनं शपथो अश्नुते" (अथर्व—कां० १९-३८-१) अर्थात् ऐ मनुष्य ! गुग्गुल आदि भेषजरूप हवि के द्वारा तुझे राजयक्ष्मा से मुक्त हो जाना चाहिए। इस वेद-वचन को चिकित्सा

के अद्‌भुत ग्रन्थ चरक में इस प्रकार से कहा है, 'तां वेदविहितां इष्टिमारोग्यार्थी प्रयोजयेत्" (चिकि० अ० ८-१२२) विज्ञानमय वेद, परम वैज्ञानिक आयुर्वेद प्रणेता के वचनों के साथ-साथ आधुनिक वैज्ञानिक व चिकित्सक इस विषय में खुले हृदय से उद्‌घोषित करते हैं। फ्रांस के प्रसिद्ध वैज्ञानिक ट्रिलवर्ट लिखते हैं कि "शक्कर से वायु-शुद्धि, क्षय-चेचक-हैजा दूर होते हैं।" डा० एम० ट्रेल्ट "मुनक्का किशमिशादि फलों के जलाने से टाइफाइड के कीटाणु ३० मिनट में, अन्य रोगों के कीटाणु २ घण्टे में दूर हो जाते हैं।" डॉ० कर्नल किंग आई० एम० एस० "घी-चावल में केशर मिलाकर जलाने से रोग के कीटाणु नष्ट होते हैं।" फ्रांस के डॉ० हैफकीन का मत है कि "घी जलाने से कीटाणु नष्ट हो जाते हैं।"

महर्षि यास्क ने वेदार्थ प्रक्रिया के ग्रन्थ निरुक्त में वेदार्थ की महत्ता सिद्ध करते हुए "अर्थ वाचः पुष्पफलमाह, याज्ञ दैवते पुष्पफले दैवताध्यात्मे वा" (अ० १, खण्ड २०) कहकर यज्ञ ज्ञान को वेद का पुष्प प्रतिपादित किया है और निरुक्त में वेद का अर्थ करते हुए यज्ञ की हवि व सोम से इन्द्र को तृप्त करते हुए वर्षा की याचना की है। शतपथ ब्राह्मण में "अग्नेर्वै धूमो जायते धूमादभ्रमभ्रा द्दृष्टि रेता जायन्ते तस्मादाह तपोजाः" (५-३) यज्ञाग्नि से जो धुआँ उत्पन्न होता है वह वनस्पतियों के रस में मिश्रित होकर उनका शोषण करता हुआ ऊपर जाता है और सूर्य के द्वारा आकर्षित जल में मिलकर ऋतु के अनुकूल वृष्टि में निमित्त बनता है। भगवान् कृष्ण ने गीता में भी कहा है, "यज्ञाद् भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्म समुद्‌भवः" अर्थात् यज्ञ से मेघ बनते हैं और यज्ञ कर्म से प्रादुर्भूत होता है।

यह एक ऐसा पक्षपात रहित शत्रु-मित्र के लिए किया जाने वाला दान है जिसका कि समान रूप में व्यवहार होता है। याचक यह किसी को भी उपालम्भ नहीं दे सकता कि मैंने तुम्हारे साथ यह उपकार किया है इसका यह प्रत्युपकार तुम्हें मेरे साथ करना चाहिए; इत्यादि। श्रौत सूत्र मीमांसा-ब्राह्मणादि ग्रन्थों में अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेधपर्यन्त जो यागों का विस्तृतरूपेण निरूपण अनेक क्रियाकलापों के साथ किया गया है उनमें भी 'स्वर्ग कामो यजेत' इत्यादि वचन तथा अदृष्ट फल के वर्णन में मूलभूत यही सिद्धांत है कि यज्ञ करने से अपने कर्तव्य का पालन करते हुए प्राणिमात्र का जो अप्रत्याशित उपकार होता है उससे स्वर्ग (सुख विशेष') जिसे मीमांसा के भाष्यकार शबर स्वामी ने विस्तृत शास्त्रार्थ लिखते हुए प्रतिपादित किया है 'तस्मात्प्रीति साधने (स्वर्ग शब्दः अ० ६-१) की प्राप्ति होती है। मनुष्य ने अपने शरीर तथा अन्यान्य प्रयोगों से जलवायु को दूषित किया अतः उस पाप का प्रायश्चित्त भी तो करना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त प्रभु ने मानव के लिए इस महती सृष्टि की रचना करके मनुष्य को दूसरों के प्रति उपकार करने का आदेश दिया है जिसके लिए यज्ञ सबसे बड़ा और सर्वोत्तम साधन है। योगिराज कृष्ण ने इस यज्ञ का महत्त्व दर्शाते हुए उपदेश दिया, 'यज्ञशिष्टाशिन सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः, भुञ्जते ते त्वधं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्' (गीता अ० ३-१३) यज्ञ करने के उपरान्त अवशिष्ट पदार्थों का उपयोग करने वाला सब पापों से छूट जाता है। वे लोग पाप खाते हैं जो केवल अपना ही पेट भरते हैं।

मानव का मन अतीव चञ्चल है अतः प्रभु का चिन्तन करते हुए भी इधर-उधर दौड़ने का प्रयत्न करता है; अन्धकारपूर्ण निर्जन वन में बैठे हुए भी देश-विदेशों की सैर करना चाहता है, बन्धु-बान्धवों की सुध लेने को उत्सुक होता रहता है, न जाने एकान्त में भी कितने बखेड़ों में पड़ा हुआ ताना तानता रहता है यह मन। द्रविड़ प्राणायाम के थपेड़ों से भी कभी-कभी वश में नहीं आता, ऐसे अस्थिर मन को अनेक क्रियाकलापों से युक्त यज्ञ-कर्म में जो कि अध्यात्मरूपी फल का देने वाला

पुष्प है फँसा दिया जाता है। मन्त्रोच्चारण से, तदर्थ भावना से व अग्नि की प्रदीप्त ज्वाला से कुछ सोचने-विचारने की प्रेरणा मिलती है। यज्ञमय प्रभु की सृष्टि को देखकर कुछ परोपकार करने की सुध आती है, मन को शान्ति मिलती है, हृदय में आनन्द का संचार होता है, स्वार्थ-भावना मिटकर परमार्थ में, दीन-दुखिया अनाथों के त्राण में कल्याण प्रतीत होता है, आरोग्य सुख-सम्पत्ति की प्राप्ति होती है। अथर्ववेद में एक मन्त्र आता है 'ओ३म् प्रातः प्रातर्गृहपतिनोऽग्निः सायं-सायं सामनसस्य दाता वस्वोवसोर्वसुदान एधीन्द्रधानास्त्व शर्तहिंमाऋधेय" (कांड १९) अर्थात् प्रातः-सायं अग्नि को प्रज्वलित करते हुए हम १०० वर्ष तक धनादि पदार्थों को प्राप्त करके पुष्ट शरीर वाले बने रहें। यज्ञ की महत्ता व विधान के सम्बन्ध में शतपथ ब्राह्मण में बहुत सुन्दर एक संवाद आता है। वैदेह जनक महाराज ने महर्षि याज्ञवल्क्य जी से प्रश्न किया, "वेत्थाग्नि होत्र याज्ञवल्क्य ! इति वेद सम्राडिति किमिति पय एवेति यत् पयो न स्यात् केन जुहुया इति व्रीहियवाभ्यामिति यत्र व्रीहियवौ न स्यातां केन जुहुया इति या अन्या ओषधय इति यदन्या नस्युः केन जुहुया इति या आरण्या ओषधय इति यदारण्या ओषधयो नस्युः केन जुहुया इति वानस्पत्येनेति यद्वानस्पत्यन्न स्यात् केन जुहुया इत्यद्भिरिति यदापो नस्युः केन जुहुया इति मे होवात्र इह तर्हि किं चनासीदथेतद् हूय देव सत्यं श्रद्धायामिति वेत्थाग्निहोत्रं याज्ञवल्क्य ! धेनुशतं ददामिति होवाच' (का० ११ अ० ३ ज० ८) इस संवाद में दूध से निःसृत घृत से प्रारम्भ करके औषध आदि के द्वारा यज्ञ का विधान करते हुए अन्त में राज्य का श्रद्धा में हवन करने का उपदेश किया। इसका तात्पर्य यह है कि यज्ञ मानवमात्र के लिये इतना श्रेयस्कर और आवश्यक है कि किसी भी प्रकार से इसकी भावना, अभ्यास को शिथिल नहीं होने देना चाहिये, इसके साथ साथ-सत्य और श्रद्धा जो यज्ञ-कार्य का आध्यात्मिक परिणाम है 'श्रद्धया सत्यमाप्यते' के अनुसार मानव-जीवन जब सत्य, श्रद्धामय हो जाता है तो सम्पूर्ण विचिकित्सा समाप्त हो जाती है।

एक समय था जब भारत के सम्राट् घोषणा किया करते थे "नमे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः नानाहिताग्निर्नाविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः ? (छान्दोग्य प्र० वि० ५ खण्ड ११ प्रज्ञा० ५) केकय-पुत्र महाराज अश्वपति ने ऋषियों को सम्बोधित करते हुए कहा है—महाश्रोत्रियो ! मेरे राज्य में कोई चोर-कृपण-शराबी विद्यमान नहीं है। ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं जो प्रतिदिन यज्ञ न करता हो। मेरे राष्ट्र में कोई भी व्यक्ति व्यभिचारी नहीं है। अहो ! वह कैसा स्वर्णमय युग रहा होगा जबकि घर-घर प्रातःकाल ही मन्त्रोच्चारण की ध्वनि से आकाश गुन्जायमान हो जाता होगा ! यज्ञ की सुगन्धि से वायुमण्डल सुवासित होकर प्राणिमात्र को आह्लादित करता होगा। फिर भला चोरी-जारी, आधि-व्याधियाँ वहाँ कैसे ठहर सकती होंगी ! आज मानव श्रमिकरूपेण चिंताग्रस्त नानारोग से पीड़ित पके आम जैसा पीलवर्ण, स्वार्थभावना-परिपूर्ण छल-कपट-द्वेष से दूषित, घोर अशान्ति के वातावरण से आवृत न जाने किधर दौड़ा चला जा रहा है। बम्बई-कलकत्ता जैसे शहरों में कारों-बेकारों, ट्रामों-बसों की दौड़ और मानव की व्यस्तता को देखकर ऐसा ज्ञात होता है जैसे कि यहाँ तो किसी को मरने का भी अवकाश नहीं है। इस संसार में ऐसे व्यक्तियों की भी कमी नहीं, जिनके पास लाखों रुपये की सम्पत्ति है, पीछे उपभोग करने वाला भी कोई नहीं ; किन्तु वे भी निर्धन श्रमिकों का रक्त चूसने में धोखा बेईमानी करने में नहीं चूकते। परोपकार-भावना प्रायः समाप्त हो रही है, घरों व बाजारों की दुर्गन्ध से दम घुटने लगता है। ग्राम-नगर हाट-बाट में बालक-जवान-बूढ़े शिक्षित-अशिक्षित सब हुक्का-बीड़ी-सिगरेट के धुएं से प्रायः साथ ही नहीं, उठते-बैठते-जागते-सोते भी अपने-आप

व अन्य जनों को भी तृप्त करने में सुख मान रहे हैं। इस धूम्रपान में करोड़ों रुपये का व्यय हो रहा है। हारमोनियम बजाकर, नाच-गाकर बीड़ी का प्रचार किया जा रहा है, मानो आज का यही धर्म-प्रचार हो।

दूध का स्थान चाय ने ले लिया, घी से अधिक डालडा में शक्ति मानी जाने लगी, सोमरस का आनन्द शराब में आने लगा, मानो कलियुग में इसी हवन का विधान हो। जहाँ देखो वैद्यराज, डॉक्टर साहिबों की दूकानों पर हाथों में शीशी थामे प्रातःकाल हो धरना दिये अधिक संख्या में व्यक्ति विराजमान दीखेंगे। आज के युग में जिससे पूछो उसे कोई-न-कोई रोग अवश्य होगा। तपेदिक जैसे संक्रामक रोगियों की संख्या बढ़ती चली जा रही है। नये-नये इन्जेक्शनों का आविष्कार हो रहा है किन्तु 'मर्ज बढ़ता ही गया ज्यों ज्यों दवा की' वाली उक्ति चरितार्थ हो रही है। वायु-शुद्धि की ओर किसी का ध्यान नहीं जा रहा है, नये-नये अविष्कारों इन्जैक्शनों के स्थानों पर यदि आविष्कारों के आविष्कार विज्ञानपूर्ण यज्ञ का प्रचार किया जाये, स्वास्थ्य विभाग, नगरपालिकाएँ आदि संस्थाएँ इस कार्य में रुचि दिखलायें तो जनता-जनार्दन का कल्याण हो जाये। वेद-शास्त्रों को मानने वाले व्यक्ति यज्ञ-हवन को मानते ही हैं, मुसलमान भी लोबान जलाते हैं; पारसी बौद्ध-ईसाई भी धूप जलाने में कोई बुरा नहीं मानते। आवश्यकता इसके प्रचार की है। इसमें देश-काल-जाति-पाँति का भेद नहीं। जो भी प्राणी श्वास लेता है उसे वायु की प्रतिक्षण अपेक्षा है, मानव-मात्र को शुद्ध वायु चाहिये। रोगी कोई बनना नहीं चाहता है। अतः यदि रोगों से निवृत्त होकर शरीर को पुष्ट बनाना है, ठीक समय पर वृष्टि के द्वारा उदर-पूर्ति के लिये शुद्ध अन्नादिपदार्थ प्राप्तकरने की अभिलाषा है, स्वार्थ भाव, छल-कपट-ईर्ष्या-द्वेष-घूसखोरी-चोरबाजारी दूरकर परोपकार करके मानवता का प्रसार करने कीउत्कण्ठा है, आस्तिक शांति प्राप्त कर दुःखदारिद्र्य से रहित होकर शाश्वत सुख पाने की उत्सुकता है, तो "न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्, कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्त्तिनाशनम्" का पाठ करते हुए दुःखियों का दुःख दूर करने के लिए इस भौतिकाग्नि में यज्ञ करते हुए अपने जीवन को यज्ञमय बनाना होगा तब 'अयन्तइध्म आत्मा, जातवेदस्तेनेध्यस्व मावर्धस्वचद्धवर्धय' यह आत्मा उस परमपिता परमात्मा की प्रदीप्ति सतेजोमय होकर संसार का कल्याण करने में रत हो जायेगी, परमार्थ ही स्वार्थ बन जायेगा। इस प्रकार जब मानवमात्र तेजोमय हो जावगा तो प्रेम व शान्ति की धारायें चारों ओर से बहने लगेंगी, उससमय यज्ञमय भगवान् का आशीर्वाद प्राप्त होगा, लोक का कल्याण हो जायगा और सब एक स्वर से कह उठेंगे—'यज्ञो-वै श्रेष्ठतम कर्म। यज्ञो वै श्रेष्ठतम कर्म।'

★★

वाल्मीकि रामायण

विशेषांक का प्रकाशन चल रहा है आशा है दीपावली तक छपकर तैयार हो जाए जिन ग्राहकों का मूल्य आ गया है उनसे निवेदन है पुस्तक छपते ही भेजी जायेगी। धैर्य रखें।

—व्यवस्थापक

हमारी प्रकाशित प्रसारित पुस्तकें

ब्र० जगदीश विद्यार्थी कृत

दयानन्द सूक्ति और सुभाषित	४-००
विद्यार्थी लेखावली	३-००
वैदिक प्रश्नोत्तरी	२-००
वेद सौरभ	२-००
वैदिक उदात्त भावनाएँ	२-००
ईशोपनिषद्	२-००
कुछ करो कुछ बनो	२-००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	१-५०
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	२-००
दिव्य दयानन्द	१-२५
प्रार्थना प्रकाश	१-२५
प्रभात वन्दन	१-२५
हास्य विनोद	१-००
ऋग्वेद शतकम्	१-००
अथर्ववेद शतकम्	१-००
यजुर्वेद शतकम्	१-००
सामवेद शतकम्	१-००

पं० भगवद्दत्त कृत

भारतीय संस्कृति का इतिहास	६-००
आर्य राजनीति के मूल तत्त्व	०-३०

पं० रामचन्द्र देहलवी कृत

देहलवी लेखावली	३-५०
ईश्वर ने दुनिया क्यों बनाई ?	०-४०

महात्मा नारायण स्वामी कृत

आर्य समाज क्या है	०-७५
वैदिक यज्ञ रहस्य	०-३७

प्रो० सुरेशचन्द्र वेदालंकार कृत

मन की अपार शक्ति	१-२५
आकर्षक व्यक्तित्व कैसे बने ?	१-५०

प्रो० नित्यानन्द वेदालंकार कृत

पूर्व और पश्चिम	७-५०
जीवन की राहें	४-००
प्रार्थना दीप	२-००
सन्ध्या विनय	१-५०
सु-राज्य की रूपरेखा	०-५०

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय कृत

विवाह और विवाहित जीवन	२-५०

पं० राजेन्द्रजी कृत पुस्तकें

भारत में मूर्तिपूजा	३.००
सनातन धर्म	२.७५
गीता विमर्श	०.७५
तीन महापातक	०.५०
शुद्ध गीता	०.२५
गीता की पृष्ठभूमि	०.४०
आर्यसमाज का नवनिर्माण	०१२
शंकर मायावाद	०.१५

महर्षि दयानन्द कृत

उपदेश मंजरी	२-५०
आत्मकथा	०-४०
स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश	०-००
वेदान्तिध्वान्त निवारण	०-२०
वेदविरुद्ध मत खण्डन	०-३७
शिक्षापत्रीध्वान्तनिवारण	०-३७
आर्याभिविनय	०-७५
आर्योद्देश्यरत्नमाला	०-१५
ऋग्वेदभाष्य का प्रथम सूक्त	०-२५
भ्रान्ति निवारण	०-३७
व्यवहारभानु	०-३०
भ्रमोच्छेदन	०-२५
गोकरुणानिधि	०-२०
गृहस्थाश्रम	०-६२
काशी शास्त्रार्थ	०-२०
सत्यधर्म विचार	०-२५
आर्यसमाज के नियमोपनियम	०-००
ईशोपनिषद्	०-२५
बालशिक्षक	०-३७

पं० आर्य मुनि कृत

ईश-उपनिषद्	०-४०
मुण्डक ,,	०-६२
केन ,,	०-५०
माण्डूक्य ,,	०-३०
ऐतरेय उपनिषद्	०-५०
तैत्तिरीय ,,	०-२५

पं० रामगोपाल विद्यालंकार

दयानन्द चित्रावली	२-५०

स्वामी ब्रह्ममुनि कृत

बृहदारण्यक उपनिषद् कथा	३-००

पं० भीमसेन कृत

श्वेताश्वतर उपनिषद्	१-००

स्वामी अच्युतानन्द

व्याख्यानमाला	२ ५०

पं० विश्वनाथ विद्यालंकार

बाल ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका	०-७५

पं० हरिश्चन्द्र विद्यालंकार

वैदिक शिष्टाचार	०-३०

त्रिलोकचन्द विशारद

महर्षि दयानन्द	१-००
स्वामी श्रद्धानन्द	१-००
गुरु विरजानन्द	०-५०

स्वामी वेदानन्द

वेदपरिचय	०-३७
स्वाध्याय संग्रह	३-००

स्वामी श्रद्धानन्द कृत

हिन्दु संगठन	१-००

पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

गोरक्षा परम कर्तव्य	०-५०

पं० अत्रिदेव विद्यालंकार

स्त्रियों का स्वास्थ्य और रोग	३-००

पं० चमूपति एम० ए०

जीवन ज्योति	४-००

चित्र चित्र चित्र

साइज २०×३०

महर्षि दयानन्द गीन	१.५०
स्वामी श्रद्धानन्द ,,	१.००
पं० लेखराम ,,	१.००
स्वामी दर्शनानन्द ,,	१.००
पं० गुरुदत्त ,,	१.००

साइज़ १८×२२

महर्षि दयानन्द ,,	०.७५
गुरु विरजानन्द ,,	०.७५
स्वामी श्रद्धानन्द ,,	०.७५
पं० लेखराम ,,	०.७५

साइज़ १५×२०

स्वामी दयानन्द ,,	०.५०
ला० लाजपतराय ,,	०.५०

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली-६　　फोन नं० २६२७६५

मुद्रक, प्रकाशक, विजयकुमार ने सम्पादित कर बदलिया प्रिंटिंग प्रेस, दाईवाड़ा दिल्ली में मुद्रित कर वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली से प्रकाशित किया।



वेदप्रकाश

वेदोऽखिलो धर्म-मूलम्

वर्ष १९
अङ्क १४

संस्थापक—गोविन्दराम हासानन्द
आश्विन २०२७, नवम्बर १९७०

वार्षिक मूल्य
३-००

सम्पादक : विजयकुमार

आदरी सम्पादक : ब्र० जगदीश विद्यार्थी

वेद-प्रवचन

★ स्व० गंगा प्रसाद उपाध्याय

दृते दृँहह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे । मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ।

(यजुर्वेद अध्याय ३६, मन्त्र १८)

अन्वय : (हे) दृते, मा (मां) दृंह । सर्वाणि-भूतानि मा (माम्) मित्रस्य चक्षुषा समीक्षन्ताम् । अहं मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे । (वयं) मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ।

अर्थ : (दृते) हे सर्वाधार परमात्मन् (सर्वाणि भूतानि) समस्त प्राणि वर्ग (मा) मुझको (मित्रस्य चक्षुषा) मित्र की आँख से (समीक्षन्ताम्) देखें । (अहं) मैं कि (सर्वाणि भूतानि) सब प्राणियों को (मित्रस्य चक्षुषा) मित्र की दृष्टि से (समीक्षे) देखता हूं या देखूँ । (वयं समीक्षामहे मित्रस्य चक्षुषा) हम सब लोग एक दूसरे को मित्र की दृष्टि से देखें ।

व्याख्या : कहने के लिए तो इस वेदमन्त्र में अत्यन्त साधारण बात का उपदेश किया गया है । अर्थात् सब लोग मेरे दोस्त हों और मैं सबका दोस्त होऊँ । परन्तु तथ्य यह है कि यद्यपि सृष्टि के शुरू से अब तक सब विद्वान् और महात्मा इसी का उपदेश कराते थे, परन्तु मनुष्य को अपने जीवन में यदि कोई कठिन बात मालूम हुई तो यह कि वह दूसरों का मित्र नहीं बन सकता और दूसरे उसके मित्र नहीं बन सकते । परन्तु इसीके साथ हर मनुष्य का यह भी अनुभव है कि जब तक वह दूसरों का मित्र नहीं बनता और दूसरे उसके मित्र नहीं बनते उसका काम नहीं चलता ।

प्राय: लोग सोचा करते हैं कि उनको स्वतन्त्र होना चाहिये । परतन्त्रता बुरी चीज़ है । एक मन्त्र में प्रार्थना है कि "अदीनाः स्याम शरदः शतम् ।" "हम आयुपर्यन्त अदीन रहें ।" अर्थात् न कोई हमारा दीन हो न हम किसी के दीन हों । परन्तु दीनता और परतन्त्रता में भेद है । परमात्मा ने

हमको न स्वतन्त्र उत्पन्न किया न स्वतन्त्र रहने के लिये बनाया। इसी प्रकार यह भी कहा जा सकता है कि परमात्मा ने हमको न परतन्त्र बनाया न परतन्त्र रहने के लिये बनाया। यदि मैं सर्वथा स्वतन्त्र हो गया और संसार के समस्त प्राणी भी मेरे समान स्वतन्त्र हो गये तो मुझे उनसे कुछ लेना है न उनको मुझसे। फिर मेरा दूसरों का मित्र होना या दूसरों का मेरा मित्र होना कोई अर्थ नहीं रखता। और यदि मैं दूसरों के तंत्र के आधीन हूं तो मेरी उनकी मित्रता कैसी? कोई दास किसी स्वामी का मित्र नहीं होता, न स्वामी दास का। इस प्रकार दोनों अवस्थाओं में मित्रता नहीं हो सकती। और मन्त्र प्रतिपादित आकांक्षायें व्यर्थ हो जाती हैं।

तो क्या मित्र होने के स्थान में हम शत्रु बनें? बनने का यत्न तो करते हैं। शत्रुता की भावना संसार से दूर नहीं है। हर प्राणी किसी न किसी के लिये वैरभाव रखता है। परन्तु रख नहीं पाता। शत्रुता मित्रता से भी कठिन है। शत्रुता दुधारी तलवार है जिससे अपने हाथ के कट जाने का बराबर भय लगा रहता है। शत्रुता रखने वाले का जीवन हर समय कष्टमय होता है। शत्रुता की आग पहले तुमको जलायेगी फिर तुम्हारे शत्रु को। तुमको तो अवश्य जलायेगी। तुम्हारे शत्रु को जलाने में कभी-कभी संदेह भी हो सकता है।

तो क्या न शत्रुता हो न मित्रता। हम उदासीन रहें? रहिये, यत्न कीजिये परन्तु रह न सकेंगे। क्योंकि सृष्टि-क्रम यह घोषणा करता है कि हम न स्वतंत्र होने के लिए बनाये गये हैं न परतंत्र होने के लिए। सृष्टि का निर्देश है परस्परतन्त्रता (Neither dependence, nor independence, but interdependence) अर्थात् मैं आपके तन्त्र के आधीन रहूं और आप मेरे तन्त्र के। मेरा और आपका दोनों का तन्त्र एक हो जिसको मैं अपना तन्त्र कह सकूं और आप अपना। मेरे और आपके तन्त्रों में द्वैधीभाव न हो। इसीका नाम है मित्रता।

स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में मित्र शब्द का यह अर्थ किया है: (त्रिमिदा स्नेहने) इस धातु से औणादिक 'क्त' प्रत्यय के होने से मित्र शब्द सिद्ध होता है। 'मेद्यति स्निह्यति स्निह्यते वा स मित्रः", जो सबसे स्नेह करने और सबको प्रीति करने योग्य है। इससे परमेश्वर का नाम मित्र है।"

और हर जीव को परमेश्वर के गुणों को धारण करना चाहिये, इसलिए हर जीव को भी मित्र होना आवश्यक है। गायत्री मंत्र में प्रार्थना भी है कि हम परमात्मा के गुणों को 'धीमहि' अर्थात् धारण करें। मित्रता परमात्मा का एक महान् गुण है। मित्र में स्नेह अर्थात् चिकनापन होता है। तेल स्नेह है। घी स्नेह है। जल स्नेह है। स्नेह पदार्थों में तरलता होती है। उसके कण अलग रहना नहीं चाहते। रह नहीं सकते। पत्थर का टुकड़ा ठोस है। दो पत्थर के टुकड़ों को कहीं रख दीजिये। वे वहीं ठहरे रहेंगे। एक दूसरे से मिलने के लिए आतुर न होंगे। परन्तु जल या तेल के कणों को आप इस प्रकार अलग नहीं रख सकते। उनकी प्रकृति में है दौड़कर दूसरे सजातीय कणों से मिल जाना। इसलिए यदि आप उनको मिलने से रोकना चाहें तो बोतल आदि किसी ऐसे पात्र में रखना पड़ेगा जिसकी दीवारों को वे तरल कण तोड़ न सकें।

प्राणियों की प्रकृति में भी यह तरलता है—हर प्राणी की प्रकृति में, मेरी प्रकृति में और आपकी प्रकृति में। आप चाहते हैं कि दूसरों से मिलें, दूसरे चाहते हैं कि आपसे मिलें, मिलना हमारे स्वभाव में है। दूर रहना नैमित्तिक है। कारणवश होता है।

ऊपर कहा जा चुका है कि सृष्टि-क्रम के अनुसार प्राणी परस्पर तंत्र बनाये गये हैं। हमारे शरीर के सब अंग एक दूसरे के परस्परतंत्र हैं। कोई अकेला काम नहीं कर सकता। आँख पैर की आकांक्षा रखती है और पैर आँख की। पैर के नख और शिर की शिखा दोनों को एक दूसरे की अपेक्षा

है। यह अपेक्षा हर मनुष्य को प्रत्यक्ष न होती हो परन्तु शरीर-विज्ञान के वेत्ता इसको भली प्रकार जानते हैं। यह तो हुई शरीर के अंगों की परस्पर-तंत्रता। अब आप अपने शरीर और दूसरों के शरीरों के सम्बन्धों पर विचार कीजिये। एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के बिना नहीं रह सकता। मनुष्य जाति दूसरे प्राणियों के बिना नहीं रह सकती। क्या कोई ऐसा देश है जहाँ केवल मनुष्य ही रहते हों। अथवा प्राणियों की केवल एक ही जाति हो। इससे हमको पता लग जाता है कि हमको एक दूसरे की ओर तरल पदार्थों के समान खिचने की कितनी आवश्यकता है। प्रायः स्वतंत्रता और परतंत्रता के संघर्ष में हम परस्परतंत्रता के आवश्यक तंत्र को सर्वथा भुला देते हैं। यदि इस मूल मंत्र को समझ लें तो हमको न केवल परहित के लिए अपितु आत्म-हित के लिए भी दूसरों की भलाई का विचार करना होगा। सह-अस्तित्व (coexistence) का यही विधान है जिसपर सृष्टि की स्थिति है। परन्तु जीव अल्प है अर्थात् अल्पज्ञ है। वह अपनी अल्पज्ञता को भी भूल जाता है। कहावत है कि मनुष्य दूसरों के धन को अपने धन से अधिक और दूसरों की बुद्धि को अपनी बुद्धि से कम समझता है। बच्चा समझता है कि उसमें उसके पिता या गुरु की अपेक्षा अधिक बुद्धि है। पागल समझता है कि संसार में केवल वही स्वयं बुद्धिमान है अन्य सब पागल हैं। इसलिये मनुष्य को सबसे पहला पाठ यह पढ़ना चाहिये कि मैं अल्पज्ञ हूँ और अल्प-शक्ति भी हूँ। मुझे अपनी इस अल्पता की अनुभूति होनी चाहिये तभी मेरी उन्नति संभव हो सकेगी। जब यह अनुभूति नहीं होती तो मनुष्य स्वार्थी होकर दूसरों से स्नेह करना छोड़ देता है। शत्रुता यहीं से आरंभ होती है। इससे बचने के लिये स्थिरता की आवश्यकता होती है।

वेदमंत्र में ईश्वर को 'दृति' कहकर पुकारा है। लौकिक भाषा में दृति नाम है चमड़े के थैले का जिसको उर्दू में मशक कहते हैं। दृति में तरल पदार्थ भरा जाता है। दृति चमड़े का वह थैला भी होता है जिसको आधार बनाकर तैराक लोग तैरना सीखते हैं। सायणाचार्य ने ऋग्वेद मंडल ४, सूक्त ४५ के १ ही मंत्र का भाष्य करते हुए लिखा है—"रसद्रव्याधारः पदार्थश्चर्ममयो दृतिरित्युच्यते।" अर्थात् चमड़े का वह पात्र जिसमें रस-द्रव्य रक्खा जाता है। यह दृति का लौकिक अर्थ है। सायण के समय में 'दृति' का केवल यही प्रयोग होगा। मंत्रों को विशेष अवसरों पर विशेष विनियोग में लाने के लिये शब्दों के अर्थों को भी उनकी तरलता कम करने के लिये योगरूढ़ी बनाना पड़ा। इसलिए उव्वट और महीधर आदि भाष्यकारों ने गृह्य या कल्प-सूत्रों के आधार पर 'दृति' आदि शब्द भी विशेष अर्थ में प्रयुक्त किये। यज्ञ की भाषा में 'दृति' एक ग्रह अर्थात् पात्र होता है जिसे महावीर ग्रह बोलते हैं। यहाँ पाठकों को याद रखना चाहिए कि 'ग्रह' का अर्थ नक्षत्र या तारा नहीं है। यज्ञ में यज्ञ के आवश्यक पदार्थ सोमरस आदि रखने के लिए कई छोटे-बड़े पात्र होते हैं। उनका नाम 'ग्रह' होता है। महावीर भी वैसा ही एक ग्रह है।

मैं समझता हूँ कि 'दृति' में मूल भावना आधार की है। और इसलिये 'दृति' का अर्थ है ईश्वर जो सबका मूलाधार है। 'दृह' शब्द का अर्थ है "हमको दृढ़ बना"। आधार पाकर आधेय में दृढ़ता आ जाती है। मनुष्य में भी परमात्मा के आधार होने पर विश्वास करके धैर्य और स्थैर्य के गुण प्राप्त हो जाते हैं। कभी-कभी स्वार्थवश हम दूसरों की मित्रता को तोड़ बैठते हैं। यह अपनी निर्बलता के कारण होता है। दो मित्र परस्पर शत्रु कैसे बनते हैं? क्या आपने कभी विचार किया है? हर घर में ऐसे उदाहरण मिलेंगे कि आदि में मित्र थे, कुछ दिनों में शत्रु हो गये। जिन स्त्री-पुरुष-युगल ने अत्यन्त प्रेम से विवाह किया था वे

एक-दूसरे का मुंह देखना नहीं चाहते। जो जातियाँ एक-दूसरे की मित्र हैं कल घोर शत्रु बन जाती हैं। यह परिवर्तन एक क्षण में कभी नहीं होता। इसके लिये समय लगता है, परन्तु मनुष्य को इसकी अनुभूति नहीं होती। अनुभूति का अभाव अनुभूत वस्तु के अभाव का प्रमाण नहीं है। हम एक बालिश्त के शरीर से साढ़े तीन हाथ के हो जाते हैं। बता नहीं सकते कि किस दिन कितने बढ़े। एक क्षण में तो नहीं बढ़ गये। एक और उदाहरण लीजिये। आपने दोपहर को १२ बजे खाना खाया। दो बजे आपसे कोई कहे कि क्या आप भूखे हैं? आप कहेंगे "नहीं"। रात को आठ बजे आप कहेंगे "मुझे बहुत भूख लगी है।" यह 'बहुत भूख' आपके शरीर में एकाएकी कब घुस गई? वस्तुतः भूख तो खाना समाप्त करने के पश्चात् ही आरम्भ हो गई थी। इतनी भूख लगना कि आप अनुभव कर सकें। इसमें आठ घण्टे लग गये। इसी प्रकार मित्रता का हाल है। पहले एक छोटी-सी बात पैदा होती है। इससे कुछ ठेस-सी लगती है। फिर वह ठेस बढ़ जाती है। मन-मुटाव इसी का नाम है। फिर खींचातानी आरम्भ होती है और दो मित्र शत्रु बन जाते हैं। यदि हम परस्पतंत्रता के नियम को दृष्टि में रक्खें तो छोटी-छोटी बातों में अपने पैरों को स्थिर रख सकते हैं। और मित्रता दृढ़ रह सकती है, मित्र मित्र की हिंसा नहीं करता। शत्रु सदा हिंसा की ही बात सोचता रहता है। गरमयुद्ध से पूर्व शीतल-युद्ध (Cold war) बनी रहती है। इस प्रकार वातावरण सदा द्वेष-पूर्ण रहता है।

बहुत से लोग हैं जो मनुष्य के साथ प्यार करने का उपदेश करते हैं। परन्तु मनुष्य से बाहर उनका प्रेम नहीं जाता। वे कभी सोचते ही नहीं कि पशु-पक्षियों में भी जीव है। उनके साथ तो सदा क्रूरता का ही व्यवहार होता है। कुछ लोग अपने देशवासियों तक ही मित्रता के भाव को सीमित रखते हैं। कुछ छोटी-छोटी बिरादरियों तक ही प्रेम करना सिखाते हैं। परन्तु वेद ने 'सर्वाणि भूतानि' अर्थात् प्राणीमात्र के साथ मित्रता का उपदेश दिया है। इस उपदेश पर श्रद्धा रखने वाला मनुष्य मांसाहारी नहीं हो सकता। क्योंकि बिना पीड़ा दिये मांस प्राप्त नहीं हो सकता। वह चोरी नहीं कर सकता क्योंकि चोरी करने से दूसरों को कष्ट पहुँचता है।

इतना ही नहीं मित्र को तो मित्र के लाभ की बात भी सोचते रहना चाहिये। इसलिए महात्मा लोग दूसरों को कष्टों से बचाने में भी सदा यत्नशील रहते हैं। "परोपकाराय सतां विभूतयः"। वह संसार कितना अच्छा संसार होगा जिसमें सब मुझे मित्र की दृष्टि से देखें और दूसरे मुझको "मा विद्विषामहै।" इसमें से कोई किसी के साथ शत्रुता न करे।

(पृष्ठ ७ का शेष)

का जवाब मिला। हाँ! घर का खर्च दिया जायगा; बाकी अवैतनिक डाक्टर के रूप में संपूर्ण दिवस काम। सेवाकार्य के लिये खुला मैदान! माँ का आशीर्वाद फलेगा; दूसरों के लिये उपयोगी जीवन व्यतीत हो सकेगा, बचपन से,—और खास करके अंतिम पाँच वर्ष से—मेरे मन में उठी हुई अभ्यास और सेवा की अभिलाषाएँ सिद्ध होंगी; दूसरों के जीवन को धन्य बनाते हुए, मेरा अपना जीवन भी धन्य होगा।"

एक ही डोरी को—जीवन डोरी को—फिरकी (रील) के चारों ओर, स्वार्थ की प्रक्रिया से लपेटें, तो वह मुट्ठी में समा जाय; परंतु उसे पतंग के—जीवन ध्येय के—सिरे बाँधकर खुला छोड़ दें, तो आसमान में चढ़ जाय!

'मैं' एक बड़ा पत्थर है, उसका भार भयंकर होता है; जिस ओर 'मैं' को रखो उसी ओर धीरे-धीरे सब झुक जाता है। अगर बचना हो, तो इसे पानी में एकदम फेंक सको, तो बहुत अच्छा।"

—टागोर

पृथ्वी पर स्वर्ग : प्रथम सोपान

—:०:—

लेखक:—Pro. C. G. Valles.
अनुवादक : प्रो० नित्यानन्द पटेल, वेदालंकार
गार्डा कॉलेज, नवसारी

**'तुम्हारे जीवन में जैसे-जैसे दूसरों को स्थान मिलेगा,
वैसे-वैसे तुम्हारा अपना व्यक्तित्व गठिल होगा ।'**

पुराने समय के खगोलवेत्ता मानते थे कि, विश्व का केन्द्र पृथ्वी ही है ; चन्द्र और सूर्य, ग्रह और तारे उसके आसपास गोल-गोल घूमते हैं। सदियों के बाद वैज्ञानिक दृष्टि विकसित हुई, तब महान् खगोलवेत्ता कोपर्निकस तथा गेलिलीओ ने, रूढ़िवादियों के रोष का जोखम उठाकर, दुनिया को बताया कि पृथ्वी स्थिर नहीं, पृथ्वी विश्व का मध्यबिन्दु नहीं, पृथ्वी सूर्य के आसपास घूमती है।

पृथ्वी पदभ्रष्ट हुई, और यह 'धृष्टता' करने के बदले, गेलिलीओ को क़ैद भुगतनी पड़ी। परन्तु ब्रह्माण्ड का सच्चा ख़याल आ जाने से, आधुनिक खगोलशास्त्र की नींव पड़ी, और आकाशयुग की सिद्धियों के लिये द्वार खुल गये।

मनुष्य भी बचपन में मानता है कि, दुनिया का केन्द्र मैं ही हूँ।

बालक देखता है कि माता-पिता—सूर्य और चन्द्र की तरह—दिनरात उसके आसपास घूमा करते हैं। उसके मुँह से निकली बात को, वे उठा लेते हैं, उसकी एक एक इच्छा पूर्ण करने के लिए, सब दौड़े-दौड़े फिरते हैं। मानों बालराजा का दरबार हो ! भेंकड़ा (रोन-रागड़ा) क्या ताना, मानों ढिंढोरा पीटा हो। दूसरों को भी ऐसी ही ज़रूरतें और इच्छाएँ होती हैं, उसका खयाल बालक को नहीं होता।

फिर, घर में छोटे भाई के जन्म होने पर, सबका ध्यान उसकी ओर हो जाता है तब, अथवा तो स्कूल जाने पर, क्लास का एक विद्यार्थी बनकर दूसरे बालकों के साथ बेंच पर बैठना पड़ता है तब, उसे गेलिलीओ का संदेश मिलता है ; दुनिया का केन्द्र तुममें नहीं, दूसरे ही ठिकाने है।

गेलिलीओ के समय, कितने ही विद्वानों ने, पृथ्वी के केन्द्रस्थान में होने का मोह छोड़ने से इनकार किया; इतना ही नहीं, दूरबीन द्वारा देखने से पृथ्वी के परिभ्रमण का निश्चय हो सकेगा,

ऐसा उन्हें कहा गया, तो उन्होंने आँखों पर दूरबीन न लगाने का ही व्रत ले लिया।

इसी प्रकार मनुष्य को भी, जब अपना बालकपन का सिंहासन छोड़ने का आदेश मिलता है, तब बहुत से तो मन से ना कहते हैं, और विश्व का वास्तविक दर्शन करने को तैयार नहीं होते; परन्तु बासी खगोलविद्या में रचे-पचे रहने को पसन्द करते हैं। ऐसा रुख अपनाने से विकास रुक जाता है।

अपने को केन्द्र में रखने से, न तो विज्ञान की प्रगति होती है, और न व्यक्तित्व-गठन सम्भव होता है।

जैसे-जैसे मनुष्य दूसरों के आसपास फिरने लगता है, वैसे-वैसे उसका मानसिक क्षितिज और जीवन-आकाश विशाल बनते जाते हैं; जैसे अपना स्वार्थ छोड़कर दूसरों के लिए वह जीना सीखता है, वैसे ही उसका व्यक्तित्व परिपक्व होता है।

इस बारे में, धर्म का उपदेश, विज्ञान का पाठ, शिष्टाचार का विवेक और मनोविज्ञान की सीख, सब एकमत हैं: स्वार्थत्याग प्रगति की आवश्यक शर्त है। मनुष्य यदि अपने चारों ओर ही फिरता रहेगा, तो वह चक्कर खाकर गिर पड़ेगा; लेकिन अगर दूसरों के आसपास फिरेगा, तो जीवनाकाश में ऊँचा ही ऊँचा चढ़ता जायेगा।

फिरना तो सबको है, लेकिन कोल्हू के बैल, और आकाश के तारे के जितना फ़र्क पड़ जाता है।

एक छोटा-सा प्रयोग कर देखो। किसी मित्र को तुमने हाल में कोई पत्र लिखा हो, तो उसमें 'मैं', 'मेरा', 'मुझे' ऐसे सर्वनाम कितनी बार आते हैं। और 'तुम' 'तुम्हारा', आदि कितनी बार, यह गिन जाओ। अगर 'तुम' की अपेक्षा 'मैं' की संख्या बढ़ जाय, और तुम्हारी सामान्य बातचीत में भी ऐसा ही होता हो, तो तुम्हारी परिभ्रमण कक्षा, बहुत विशाल नहीं, ऐसा मानने का कारण मिलेगा।

उसे अधिक विशाल बनाने के लिए, दूसरों में, सच्चे दिल से, व्यक्तिगत रस लेने लगो। उनके विचार जानने से, तुम्हारी अपनी दृष्टि अच्छी बन जायेगी; उनका दुःख देखकर तुम्हारा दुःख कम होने लगेगा; उनके सुख में भागीदार बनकर, तुम्हारा आनन्द छलकने लगेगा।

घड़े का पानी घड़े में रहे, तो वह बँधा हुआ, निश्चेतन, निस्पंद रहेगा, लेकिन अगर उसे समुद्र में डाल दिया जाय, तो उसमें महासागर का वेग और शक्ति, विशालता और गहनता आ जाय।

केन्द्र में किसे रखकर जीवनवृत्त रचना चाहिये, यह प्रश्न है।

हृदय-सिंहासन पर किसका अभिषेक करना चाहिये, यह उलझन है।

परन्तु अगर पुजारी अपनी ही मूर्त्ति गद्दी पर बिठा दे, अगर राजपुरोहित अपने ही मस्तक पर अभिषेक करे, तो अनर्थ हुआ कहा जायगा।

और दुःख की बात तो यह है कि, अपने जीवन में हम ऐसी ही धृष्टता कर बैठते हैं। अपने आपको केन्द्र में बिठाकर राज्य, पूजा और जीवन चलाते हैं; और फलस्वरूप हमारा वृत्त (वर्तुल), एक छोटे बिन्दु जैसा बन जाता है।

लोग तुम्हारी स्तुति करें, तो तुम्हें अच्छा लगता है; तुम्हारी बात सुनें, तो तुम खुश होते हो; तुम्हारा अभिप्राय पूछें, तो तुम्हारी छाती गज-गज फूलने लगती है; तुम्हारा सहयोग माँगें, तो तुम्हें अपने महत्त्व का खयाल एकदम आ जाता है। तो अब दूसरों का सहयोग लेना, दूसरों की बात सुनना, दूसरों का अभिप्राय जानना, और प्रसंग आने पर पूरे दिल से दूसरों की स्तुति करना, तुम्हें सीखना चाहिये। चुनाव के सिलसिले में, मत लेने के लिए बाहर निकल पड़े उम्मीदवार की तरह खुशामद और औपचारिक विवेक का दिखावा करने की बात नहीं; परन्तु अपनी दुनिया की क्षितिज-रेखा लम्बाने के लिए, अपने दिल को दरियादिल, और अपनी दृष्टि को विश्व-दृष्टि बनाने के लिए, दूसरों के लिये ही जीने का मंगल प्रयोग करना जरूरी है।

अपने हृदय के आँगन में मेहमानों को आने दो, उनका आदर-सत्कार करो, उनकी सेवा को अपनी प्रथम साधना समझो। कवि का निम्न उद्गार सदैव याद रखो:—

'प्रेम कहो, तो मुझ पर प्रेम करो, और धिक्कार कहो, तो मुझे धिक्कारो; लेकिन मेरी एक ही विनय है: मेरी उपेक्षा तो न करो!"

तुम्हारे जीवन में जैसे-जैसे दूसरों को स्थान मिलेगा, वैसे-वैसे तुम्हारा अपना व्यक्तित्व गठित होगा।

चेतावनी का एक शब्द: सेवा के नाम स्वार्थ साधने की कुटिल वृत्ति कभी न रखना। दुनियाके बाजार में जनसेवा की तख़्तियाँ लगाकर बहुत से दुकानदार बैठे हैं; परंतु इन दुकानों में चलता है सिर्फ़ लोभ का व्यापार और नफे का हिसाब। सेवा के नाम पर व्यापार, जनकल्याण के बहाने आत्मभोग, समाजसुधार के झंडे के नीचे समाज-शोषण; यह तो बिच्छू की तरह, हँसता मुँह रखकर, पूँछ टेढ़ी करके, विषैला डंक मारने जैसा है।

दूसरे मनुष्यों को अपनी प्रगति का सोपान, अपने कीर्तिमन्दिर का पत्थर, अपनी शतरंज की मुहरें कभी न समझो।

मानव व्यक्ति की अमर ज्योति, जैसी तुममें, वैसी ही उसमें भी झलकती है।

किसी को अपना साधन न बनाओ, किसी को अपने पैरों के नीचे दबाकर ऊँचा उठने का भ्रष्ट प्रयत्न न करो। दूसरों का सुख छीनकर स्वार्थ सिद्ध करने जाओगे, तो स्वार्थ के कोल्हू में पिस जाओगे।

"स्वार्थ वस्तु स्वयं अति क्षुद्र है, इसलिए जिस पर स्वार्थ अपना हाथ रखता है उसे भी क्षुद्र बना देता है; इतना ही नहीं, जिन मनुष्यों का, निजी मतलब सिद्ध करने के लिये, हम उपयोग करते हैं, वे हमारे सामने अपना मान खोकर यंत्ररूप से से बन जाते हैं। साहबके मन, ऑफिस के कर्मचारी मुख्यत: यंत्र होते हैं; राजा के मन सैनिक यंत्र होते हैं; जो किसान, हमें अन्न खिलाता है, वह सजीव हल-सा बन जाता है।" **—टागोर**

स्वार्थ सृष्टि अर्थात् जड़यंत्रों की सृष्टि, बुतों का कारखाना, जीवित मुर्दों का क़ब्रिस्तान; जबकि परार्थ की दुनिया तो प्रेम और मैत्री, विश्वास और उदारता, जीवन और उल्लास की दुनिया है।

"मेरे अपने ही इतने अधिक प्रश्न हैं कि, दूसरों का विचार करने का मुझे अवकाश ही नहीं, यह खुदगर्ज की फ़िलॉसॉफ़ी है।" दुनिया में इतने अधिक महान् और तात्कालिक प्रश्न, हल हुए बिना पड़े हैं कि, मेरे अपने प्रश्न का विचार करने की बारी अभी आई ही नहीं है," यह जीवनवीर की घोषणा है।

वस्तुत: दूसरों के प्रश्नों को हल करते हुए, अपने प्रश्नों का हल आ जायगा, जबकि अपने प्रश्नों में उलझे रहने से, दुनिया के प्रश्नों में एक और की वृद्धि ही होगी!

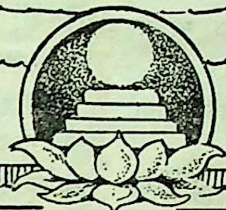
दो विद्यार्थियों की डायरी में से ली गई नीचे की पंक्तियों की तुलना करो: "आज मेरा जन्म-दिवस है, परंतु हृदय में आनन्द नहीं। विचार करता हूँ कि हरेक मनुष्य, अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिये रचा गया है। दूसरा कोई लक्ष्य, दुनिया में दीखता नहीं। दो व्यक्तियों के स्वार्थ के परिणाम-स्वरूप, मैं जन्मा हूँ। दूसरों का स्वार्थ पुष्ट करके बड़ा हुआ, मुझसे फीस लेकर शिक्षक मुझे पढ़ाता है, रिश्वत लेकर परीक्षक मुझे पास करता है; और अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिये, मैं एक दिन शादी करूँगा; और वृद्धावस्था में मेरे बच्चे मेरी सँभाल लें—मानों बीमा पके और पालन-पोषण के लिये रुपये मिलें—इस इरादे से, यथाशीघ्र बालकों का पिता भी बनूंगा। स्वार्थ के इस विष-चक्र में से मुझे कौन बाहर लायेगा?"

और दूसरे (मैडिकल के अन्तिम वर्ष में पढ़ने वाले विद्यार्थी) की डायरी में से "आज मेरी अर्ज़ी

(शेष पृष्ठ ४ पर)

मुद्रक, प्रकाशक, विजयकुमार ने सम्पादित कर बदलिया प्रिंटिंग प्रेस, दाईवाड़ा दिल्ली में मुद्रित कर वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली से प्रकाशित किया।

वेद प्रकाश



वेदोऽखिलो धर्म-मूलम्

वेद प्रकाश के सम्बन्ध में

(१) पिछले तीन-चार वर्षों से 'वेदप्रकाश' का वार्षिक मूल्य वही रहा है जो इसके विशेषांकों का मूल्य था। साधारण अंकों को निःशुल्क समझा जाता था।

(२) इसी प्रकार इस वर्ष के विशेषांक 'वाल्मीकि रामायण अंक' के मूल्य १२-००, सजिल्द १४-०० में वर्ष के शेष ग्यारह अंकों का भी मूल्य आ जाता है।

(३) बहुत-से कृपालु पाठकों ने 'वाल्मीकि रामायण' का मूल्य भी भेजा है तथा तीन रुपये 'वेदप्रकाश' का भी। ऐसे ग्राहकों के तीन रुपये हम अगले वर्ष के हिसाब में जमा कर रहे हैं।

(४) बहुत-से पाठकों ने केवल तीन ही रुपये भेजे हैं उनसे निवेदन है कि वे 'वाल्मीकि रामायण अंक' को प्राप्त करने के लिए ९-०० और भेज दें।

(५) पत्र-पत्रिकाओं को डाक-विभाग विशेष सुविधा देता है। 'वेदप्रकाश' पर आप देखते होंगे केवल दो पैसे का टिकट लगा होता है। यदि यह रियायत न मिले तो इस पर बीस पैसे का टिकट लगाना पड़े। पर यह रियायत केवल पत्रिकाओं और उनके विशेषांकों के लिए ही होती है, अन्य पुस्तकों को भेजने के लिए रियायत नहीं मिलती।

इसलिए अन्य पुस्तकें पृथक् मँगायें। 'रामायण' के साथ मँगाने पर डाक-व्यय अधिक होगा। निश्चित दिन भेजने के लिए मिलती है। एक ही अंक को उस दिन के अलावा हम नहीं भेज सकते। ३० दिसम्बर तक आने वाले 'वाल्मीकि रामायण' के ग्राहकों को ही हम डाक-व्यय अपनी ओर से लगाकर भेज सकेंगे। इसके बाद मूल्य आने पर अतिरिक्त डाक-व्यय ग्राहक को वहन करना पड़ेगा।

(६) 'वाल्मीकि रामायण अंक' बड़ी तेज गति से छप रहा है। लगभग ६०० पृष्ठों के इस अंक के ५०० पृष्ठ छप चुके हैं। छपाई शुद्ध हो, साफ हो, इस बात को ध्यान में रखते हुए इसके छपाने में जल्दिबाजी नहीं की गई। व्यवस्था की जा रही है कि दिसम्बर में छप जाय और जनवरी के अंक के रूप में वाल्मीकि रामायण आपकी सेवा में भेज दिया जाए।

(७) कई ग्राहकों ने 'वाल्मीकि रामायण अंक' वी० पी० से भेजने को लिखा है। उन्हें रामायण अंक जनवरी में वी० पी० से भेजा जा रहा है। कृपया उस वी० पी० को स्वीकार करें।

(८) 'वेदप्रकाश' का मूल्य भेजते समय अपना ग्राहक-नम्बर अवश्य लिखें। यदि आप नये ग्राहक हैं तो 'नया ग्राहक' लिख दें।

(९) वेदप्रकाश हर माह ५ ता० को डाक में डाल दिया जाता है। हम विशेषांक का ही मूल्य लेते हैं इसलिए कोई साधारण अंक न पहुँचे तो उसके लिए पत्र-व्यवहार न करें क्योंकि हमारे पास



वर्ष १९ अङ्क ५

संस्थापक—गोविन्दराम हासानन्द
मार्गशीर्ष २०२७, दिसम्बर १९७०

वार्षिक मूल्य ३-००

सम्पादक : विजयकुमार

आदरी सम्पादक : ब्र० जगदीश विद्यार्थी

वेद-प्रवचन

★ स्व० गंगाप्रसाद उपाध्याय

अन्ति सन्तं न जहात्यन्ति सन्तं न पश्यति । देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति ।

(अथर्ववेद काण्ड १०, सूक्त ८, मंत्र ३२)

अन्वय : अन्ति सन्तं न जहाति । अन्ति सन्तं न पश्यति । देवस्य काव्यं पश्य । (इदं काव्यं) न ममार, न (च) जीर्यति ।

अर्थ : (देवस्य) परमात्मा के (काव्यं) काव्य को (पश्य) देखो । (अन्ति सन्तं) वह इतना निकट है कि (न जहाति) कोई उसको छोड़ नहीं सकता (अन्ति सन्तं) वह इतना निकट है (न पश्यति) कि कोई उसे देख नहीं सकता । फिर भी (न ममार) ईश्वर का वह काव्य (न ममार) कभी मरता नहीं (न जीर्यते) न जीर्ण होता है ।

व्याख्या—कई अन्य वेद-मंत्रों में बताया जा चुका है कि ईश्वर (स पर्यगात्) सम्पूर्ण सृष्टि में व्यापक है। छोटे से छोटा परमाणु भी उससे अलग नहीं है :

निहां[1] है जर्रे जर्रे में, अयाँ[2] है जर्रे जर्रे से ।
मुनव्वर[3] पर्दा है, पर्दानशीं के रूये रोशन से ।

उपनिषद् कहती है :—

अरा इव रथनाभौ संहता यत्र नाड्यः
स एषोऽन्तश्चरते बहुधा जायमानः ।
ओमित्येवं ध्यायथ आत्मानं
स्वस्तिवः पाराय तमसः परस्तात् ।।

(मुण्डक उपनिषद्, मुण्डक २, खण्ड २, मंत्र ६)

जिस प्रकार रथ के पहिये की नाभि में अरे लगे रहते हैं जिनके सहारे पहिया अपनी परिधि को यथेष्ट

---

१. निहाँ—छिपा हुआ ; २. अयां—प्रकाशित ; ३. मुनव्वर—रोशन ।

अवस्था में रखता है उसी प्रकार मनुष्य के हृदय में नाड़ियाँ लगी हुई हैं। उस हृदय के भीतर एक और महती शक्ति काम करती है जो अपने अस्तित्व को नाना प्रकार से प्रकाशित और प्रमाणित करती है। यही शक्ति परमात्मा है। इसी का नाम 'ओ३म्' है। इसको अपने आत्मा के अन्दर आत्मा का भी आत्मा समझकर ध्यान करो। ऐसा करने से तुम अन्धकार से पार हो जाओगे और तुम्हारा कल्याण होगा।

उपनिषद् के इस वचन में बताया गया है कि जैसे परमात्मा हर वस्तु के भीतर विराजमान है उसी प्रकार हमारे हृदयों के भीतर भी है। और वही जिस प्रकार ब्रह्माण्ड को चलाता है उसी प्रकार इस पिण्ड को भी चलाता है। इस समस्त व्यवस्था को वेदमंत्र में 'काव्य' के नाम से सम्बोधित किया है। यजुर्वेद के एक मंत्र में (४०-८) ईश्वर को कवि कहा था। अथर्ववेद में इस कवि के काव्य को दर्शाया है। जिस प्रकार कालिदास की कृतियां कालिदास की बुद्धि को प्रमाणित करती हैं, उसी प्रकार प्रभु की प्रभुता इस जगन्मयी कविता से प्रकट होती है। काव्य में द्वन्द्वों की पद-व्यवस्था होती है, इसी प्रकार सृष्टि के अंग-प्रत्यंग में एक रहस्यमयी व्यवस्था है। काव्य को परखने के लिये काव्य को परखने वाली निर्मल बुद्धि चाहिये। इसी प्रकार जगत्रूपी काव्य की व्यवस्था भी हर एक की समझ में नहीं आती। परन्तु जिस प्रकार साहित्य के परखने वाले कवि के एक-एक शब्द पर लट्टू हो जाते और आनन्द से झूमने लगते हैं, इसी प्रकार प्रभु के इस विशाल काव्य को देखकर भक्त का निर्मल आत्मा मोद-प्रमोद से आपूर्ण हो जाता है। अंग्रेजी भाषा के कवियों ने आकाश के लोकलोकान्तरों का निरीक्षण करके कहा है म्यूज़िक इन दी स्फ़ियर्स (Music in the Spheres) अर्थात् ग्रहों-उपग्रहों की चाल क्या है एक प्रकार की राग-रागिणियाँ हैं जिनकी आनन्दमयी रश्मियाँ चारों ओर गुञ्जरित हो रही हैं। यही प्रभु का काव्य है। और वेदमंत्र मनुष्य को उपदेश देता है कि इसी काव्य को देखने और समझने का यत्न करना चाहिए।

इस काव्य के लिये कहा कि यह "अन्ति सन्तं" अत्यन्त समीप है। समीप से भी समीप। अर्थात् घनिष्ठ। जो चीज़ अत्यन्त समीप होती है वह छोड़ी नहीं जा सकती। आप उस चीज़ को छोड़ सकते हैं जिसका आपका सम्बन्ध किसी आकस्मिक घटना द्वारा हुआ हो। परन्तु सृष्टि का सृष्टिकर्ता के साथ आकस्मिक सम्बन्ध तो है नहीं। जो लोग समझते हैं कि सृष्टि अकस्मात् बिना कारण के हो गई और सृष्टि तथा सृष्टिकर्ता में समवाय-समवायि सम्बन्ध नहीं है, वे सृष्टि के कार्यको नहीं समझते। जो समझते हैं कि कुछ प्रकृति के पदार्थ अकस्मात् मिल गये हैं और इनके मिलाने के लिये किसी कवि की आवश्यकता नहीं, वे स्पष्ट घटनाओं से भी आँखें मीच लेते हैं। एक बार एक युवक ने मुझे एक कम्युनिष्ट नेता का एक ग्रंथ दिया, शायद वह कार्ल मार्क्स के प्रसिद्ध शिष्य गोर्की का था। वह मेरे पास वह ग्रन्थ इसलिए लाया था कि उससे ईश्वरवाद का खण्डन होता था। उसके शब्द इस प्रकार के थे : 'The world is an organized matter' अर्थात् सृष्टि क्या है? केवल जड़ माद्दे का एक सुव्यवस्थित स्वरूप। मैंने उस युवक को यह वाक्य दिखाया और उससे पूछा कि 'आर्गेनाइज्ड' या सुव्यवस्थित का क्या अर्थ है। क्या बिना व्यवस्थापक के भी व्यवस्था हो सकती है? क्या बिना चतुर हलवाई के भी घी, चीनी और आटा मिलकर स्वादिष्ट हलवा बन सकता है? यदि नहीं तो संसार के इतने अद्भुत पदार्थों को देखकर तुम व्यवस्थापक को क्यों भूल जाते हो? अंगूर, सेब, नारंगी, अनार, किसी स्वादिष्ट फल को ले लीजिये। है तो यह सब जड़ पदार्थों का ही मेल। परन्तु क्या एक फल और दूसरे फल में पदार्थों का यह मेल बिना व्यवस्थापक के हुआ है? अकस्मात्वाद के पोषकों का कहना है कि चीनी के परमाणु और खटाई के परमाणु अलग-अलग विद्यमान थे। वह किसी विशेष प्रगति के कारण घुणाक्षरन्याय से ऐसी अवस्था में आ गये कि एक अंगूर और दूसरा सेब हो गया। किसी दूरस्थ भूतकाल से प्रकृति के परमाणु आपस में टकराते रहे। अन्त में एक ऐसी अवस्था आ गई कि हम उसको वर्तमान सृष्टि के रूप में देखते हैं। इसमें ईश्वर का कोई काम नहीं। Flint (फ़्लिण्ट) महोदय ने एक उत्तम पुस्तक लिखी है जिसका नाम है 'थीइज़्म (Theism)' या ईश्वरवाद। इसमें फ़्लिण्ट ने इस कुतर्क

का उत्तर दिया है। वह कहता है कि किसी प्रेस में चले जाइये। वहां लोहे के अक्षरों को ले लीजिये और कम्पोजीटरों से कहिये कि इनको उछालते रहो। क्या तुम समझते हो कि एक दिन ऐसा आयेगा जब उछलते-उछलते, टकराते-टकराते वे अक्षर शेक्सपियर के नाटकों का रूप धारण कर लें? शेक्सपियर का काव्य तो एक दक्ष कवि का काव्य है। और उस काव्य की व्यवस्था को समझकर ही साधारण बुद्धि से अल्प-शिक्षित कम्पोजीटर भी धड़ाधड़ शेक्सपियर के काव्यों को प्रकाशित करने में समर्थ हो जाते हैं। यह है शेक्सपियर का काव्य! परन्तु जिस काव्य की ओर वेदमंत्र ने संकेत किया है वह काव्य तो बड़ा अद्भुत है। वह हमारी मानवी प्रकृति के अत्यन्त समीप है। उसकी तान तो हमारे अन्तरात्मा में भी सुनाई देती है। इसलिये इस काव्य को तो कोई छोड़ ही नहीं सकता। जैसे ईश्वर सृष्टि के कण-कण में ओत-प्रोत है उसी प्रकार यह काव्य भी ओत-प्रोत है। इसी काव्य की प्रेरणा से सिंहनी अपने बच्चे को दूध पिलाती है। इसी काव्य के प्रभाव से मधुमक्खी मधु इकट्ठा करने में आनन्द लेती है। इसी काव्य का प्रदर्शन आप चकोर के चन्द्रदर्शन और पपीहा की पी-पी में पाते हैं। ऋषियों को समाधि में इसी काव्य से आनन्द मिलता है। इस काव्य के राग से समस्त संसार रंजित है।

एक और प्रकार से देखिये। प्रभु का काव्य प्रभु की व्यवस्था या विधान है। इस विधान का आधिपत्य समस्त सृष्टि पर है। पत्तों का वृक्षों पर हिलना, पृथ्वी का हर वस्तु को अपने केन्द्र की ओर खींचने का व्यापार, आकाश मार्ग में तारागण की घुड़दौड़, यह सब प्रभु का काव्य है। इसकी जकड़ में समस्त संसार है। यह इतना हमारे समीप है कि हम इसको छोड़ नहीं सकते। मनुष्य वस्त्रों को उतारकर फेंक सकता है, परन्तु त्वचा को उतार नहीं सकता। त्वचा का शरीर से घनिष्ठ सम्बन्ध है। ईश्वर का और सृष्टि का इतना सान्निध्य है कि हम ईश्वर को छोड़ नहीं सकते। बहुत-से नास्तिकों ने यह इच्छा की कि ईश्वर के नाम को संसार से मिटा दें। सुना है कि जब रूस में ईश्वर-विरोधी आन्दोलन आरंभ हुआ तो रूस के एक नगर में एक अर्थी निकाली गई। लोग पूछते थे—"कौन मर गया? किसका जनाजा है?" अर्थी-वाले उत्तर देते थे—"खुदा का। खुदा मर गया। अब हम इसको कब्र में दफनाने जा रहे हैं।" परन्तु आज आप देखिये। परमात्मा के प्रभावशाली काव्य का गौरव बढ़ रहा है। घट नहीं रहा। कभी-कभी मनुष्य अपने दुःखों से तंग आकर कह बैठता है कि यदि ईश्वर होता तो हमको इतना दुःख न देता! परन्तु यह उनकी अदूर-दर्शिता है। वे नहीं जानते कि ईश्वर की व्यवस्था का अनुभव करना ही सुख का मूल है।

फिर यदि ईश्वर का काव्य हमारे इतने समीप है तो हम इसको देख क्यों नहीं सकते? वेदमंत्र उत्तर देता है कि अत्यन्त निकट होना ही न दीख पड़ने का हेतु है। विद्यमान होने पर भी यदि कोई चीज़ दिखाई न दे तो इसके नीचे लिखे कारणों में से कोई एक या अनेक कारण होंगे :—

(१) अति निकट होना जैसे आँख का सुरमा। (२) अति दूर होना जहाँ आँख न पहुँच सके। (३) बहुत बड़ा होना। (४) अति सूक्ष्म होना जैसे काष्ठ के भीतर आग। (५) व्यवधान या बीच में परदा होना, जैसे दीवार की दूसरी ओर की चीज़। (६) आँख में विकार होना या मन का चंचल होना।

वेदमंत्र कहता है कि 'अन्ति सन्तं न पश्यति।' ईश्वर इतना निकट है कि जीव उसको देख नहीं सकता।

परन्तु यदि ऐसा ही है तो यह क्यों कहा कि 'देवस्य पश्य काव्यम्' प्रभु के काव्य को देखो। जिसको देख नहीं सकते उसको कैसे देखें? केन-उपनिषद् में इस कठिनाई को आचार्य ने अनुभव करके कहा है—"न तत्र चक्षुर्गच्छति, न वाग् गच्छति, न मनो, न विद्मो, न विजानीमो यथा एतद् अनुशिष्याद् अन्यद् एवतद् विदिताद्अथो अविदिताद् अधि। इति शुश्रुम पूर्वेषां ये नः तद् व्याचचक्षिरे।" (केन उप० १-३)

आँख वहाँ तक नहीं पहुँच सकती, न वाणी, मन। न हम जानते हैं। हमारी समझ में नहीं आता कि शिष्य को कैसे उपदेश दें। वह ज्ञात वस्तु से भी परे है और अज्ञात से भी हम अपने पूर्वजों से ऐसा ही सुनते चले आ रहे हैं।

परन्तु हम हर एक चीज को आँख से देखने का ही क्यों यत्न करें ? आँख का क्षेत्र संकुचित है, इसी प्रकार कान आदि का। सत्य वही तो नहीं है जो केवल इन सीमित इन्द्रियों से दीख सकता हो। उपनिषद् कहती है कि "श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचो हवाचं स उप्राणस्य प्राणः चक्षुषः चक्षुः अतिमुच्य धीराः प्रेत्यास्माल्लीका दमृता भवन्ति।" (केन० उप० १। २)

अर्थात् जो कान का कान, मन का मन, वाणी का वाणी, प्राण का प्राण और आँख की आँख है। वह तो आत्मा से ही जाना जायगा। यह इन्द्रियाँ तो मरती भी हैं और जीर्ण भी होती हैं। प्रभु का काव्य तो न मरता है न जीर्ण होता है। वह ऐसी आँख है जो असंख्य आँखों को निरन्तर देखने की शक्ति प्रदान करती है। कठोपनिषद् में कहा है :—

पराञ्चिखानि व्यतृणत् स्वयंभूः तस्मात् पराङ् पश्यति नान्तरात्मन्। कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमक्षदा वृत्त चक्षुरमृतत्वमिच्छन्" (कठ० उ० २-१-१) अर्थात् इन्द्रियों का मुख बाहर की ओर है। वह अपने भीतर निहित शक्ति को नहीं जान सकती। जो धीर पुरुष इन्द्रियों में व्याप्त आत्मा को देखते हैं वही अमरत्व को प्राप्त होते हैं। अमर काव्य को समझकर ही अमरत्व की प्राप्ति होगी।

ईश्वर—जिसके, गुण, कर्म स्वभाव और स्वरूप सत्य ही हैं जो केवल चेतनमात्र वस्तु है तथा जो एक अद्वितीय सर्वशक्तिमान्, निराकार, सर्वत्र व्यापक, अनादि और अनन्त आदि सत्यगुण वाला है और जिसका स्वभाव अविनाशी, ज्ञानी, आनन्दी, शुद्ध, न्यायकारी, दयालु और अजन्मादि है, जिसका कर्म जगत् की उत्पत्ति, पालन और विनाश करना तथा सब जीवों को पाप-पुण्य के फल ठीक-ठीक पहुँचाना है, उसको ईश्वर कहते हैं।

ईश्वर—

जिसके कर्म स्वभाव गुण और स्वरूप सत्य होय।
चेतन वस्तु जगत में, प्रभु हमारा सोय॥
जो अद्वितीय शक्तिमय, निराकार भगवान।
सर्व व्यापक हर जगह रम रहे एक समान॥
जिसका अन्त न आदि है, इक रस रहे सदैव।
सत्य गुणों की खान जो वही पिता महादेव॥
अविनाशी अनादि जो; सत्य ज्ञान भण्डार।
शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव हैं, दाता सर्वाधार॥
दयावान कृपालु है जन्म मरण से रहत।
पालक रक्षक जगत का, दाता सब जग कहत॥
उत्पत्ति करता जगत का, करता आप संहार।
न्याय करे फल कर्म दे, करत न लागे वार॥
नित्य वस्तु है जगत में, ईश्वर कहिये सोय।
उस जैसा संसार में और पूज्य नहीं कोय॥

सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सब का आदि-मूल परमेश्वर है॥ १॥

परमेश्वर का भी प्रत्यक्ष है। और जब आत्मा मन और मन इन्द्रियों को किसी विषय में लगाता वा चोरी आदि बुरी वा परोपकार आदि अच्छी बात के करने का जिस क्षण में आरम्भ करता है उस समय, जीव की इच्छा ज्ञानादि उसी वाञ्छित विषय पर झुक जाती है। उसी क्षण में आत्मा के भीतर से बुरे काम करने में भय, शङ्का और लज्जा तथा अच्छे कामों के करने में अभय, निःशङ्कता और आनन्दोत्साह उठता है। वह जीवात्मा की ओर से नहीं किन्तु परमात्मा की ओर से है। और जब जीवात्मा शुद्ध होके परमात्मा का विचार करने में तत्पर रहता है उसको उसी समय दोनों प्रत्यक्ष होते हैं। जब परमेश्वर का प्रत्यक्ष होता है तो अनुमानादि से परमेश्वर के ज्ञान होने में क्या सन्देह है ? क्योंकि कार्य को देख के कारण का अनुमान होता है।[1]

परमेश्वर हम लोगों का माता पिता के समान है। हम सब लोग जो उसकी प्रजा हैं उन पर नित्य कृपादृष्टि रखता है जैसे अपने सन्तानों के ऊपर पिता और माता

१. सत्यार्थ प्रकाश, सप्तम समुल्लास, पृष्ठ ११४ (संवत् १९८५ में २२वीं बार मुद्रित)

(शेष पृष्ठ ८ पर)

तीन उपदेश

★ आचार्य जगदीश विद्यार्थी एम० ए०

मुमुक्तमस्मान्दुरितादवद्याज्जुषेथां यज्ञममृतमस्मासु धत्तम् ।।

—अथर्व० ५।६।८

शब्दार्थ—हे प्रभो ! आप अपनी सौम्य और रौद्र दोनों शक्तियों से (अस्मान्) हमें (अवद्यात् दुरितात्) निन्दनीय पापाचरण से, दुराचार से (मुमुक्तम्) छुड़ाइए । (अस्मासु) हममें (अमृतम्) दिव्य-जीवन, मोक्ष-सुख (धत्तम्) धारण कीजिए। परमात्मा उपदेश देता है—(यज्ञम् जुषेथाम्) हे गृहस्थो ! [पति-पत्नी तुम दोनों] यज्ञ का प्रीतिपूर्वक सेवन करो ।

व्याख्या—एक वैदिक परिवार में मुख्यतः पति-पत्नी और कुछ बालक होते हैं । ऐसा ही एक वैदिक परिवार अपने उत्थान के लिए, आत्म-कल्याण के लिए परमात्मा से प्रार्थना कर रहा है—

अस्मासु अमृतं धत्तम्—हे प्रभो ! हममें अमृत का आधान कीजिए । मृत्यु को परे धकेल कर अमृत प्राप्त करना यह मानव जीवन का लक्ष्य है। अमृत क्या है ? वेद और वैदिक साहित्य में अमृत के अनेक अर्थ हैं ।

अमृत का अर्थ है दिव्य-जीवन । वेद हमें दीन-हीन जीवन बिताने का आदेश नहीं देते । वेद हमें ब्रह्मतेज से युक्त, ओजस्वी, तेजस्वी और यशस्वी और दिव्य-जीवन [Glorious life] बिताने का सन्देश और उपदेश देते हैं।

अमृत का अर्थ है माधुर्य । हमारे जीवनों में माधुर्य हो। वेद के शब्दों में **जिह्वाया अग्रे मधु मे जिह्वामूले मधूलकम्** । [अथर्व० १।३४।२] मेरी जिह्वा के अग्र भाग पर माधुर्य हो और मेरे हृदल में मधु का छत्ता हो । न केवल जिह्वा और हृदय ही माधुर्य से ओत-प्रोत हो अपितु चोटी से लेकर एड़ी तक हमारा सारा शरीर मधुमय हो । हमारे खान-पान, चाल-ढाल, रहन-सहन, क्रिया-कलाप सबसे माधुर्य टपकता हो ।

अमृत का अर्थ होता है मोक्ष । संसार के ताने-बाने को बुनते हुए हम अन्त में मोक्ष-सुख को प्राप्त करें ।

अमृत का अर्थ होता है शिवसङ्कल्पयुक्त मन। वेद में कहा है—**यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु** । [यजु० ३४।४] मनुष्यों के अन्तः करण में जो (अमृत) नाशरहित प्रकाशस्वरूप ज्योति है, वह मेरा मन शिवसङ्कल्प से युक्त हो ।

अमृत का अर्थ होता है नाशरहित परमात्मा । हम परमात्मा को जानें । उसकी उपासना और आराधना करें । आस्तिक भावों को अपने जीवन में स्थान दें ।

अस्मान् अवद्यात् दुरितात् मुमुक्तम् । मन्त्र में दूसरी प्रार्थना है—हे प्रभो ! हमें निन्दनीय दुराचार से पृथक् कीजिए । सदाचार जीवन है और दुराचार मृत्यु । इसलिए भक्त प्रभु से प्रार्थना करता है—

परि माग्ने दुश्चरिताद् बाधस्वा मा सुचरिते भज ।
उदायुषा स्वायुषोदस्थाममृताँ अनु ।।—यजु० ४।२८

हे परमात्मन् ! आप मुझे दुष्टाचार से सब ओर से हटाइए और मुझे उत्तम चरित्र में स्थापित कीजिए । मैं जीवन-मुक्त, आत्मोपासक महापुरुषों का अनुगामी होकर सुदीर्घायु और दिव्य जीवन से युक्त होकर उत्तम मार्ग में स्थिर रहूँ ।

सदाचार की महिमा का वर्णन करते हुए महर्षि मनु ने कहा है—

आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः ।
आचाराद्धनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षणम् ।।
दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः ।
दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च ।।
सर्वलक्षणहीनोऽपि यः सदाचारवान्नरः ।
श्रद्दधानोऽनसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति ।
(मनु० ४।१५६-१५८)

मनुष्य सदाचार से दीर्घायु, उत्तम प्रजा और अक्षय धन को प्राप्त होता है । सदाचार से अधर्मयुक्त लक्षणों का नाश हो जाता है ।

जो दुराचारी पुरुष होता है वह संसार में सर्वत्र निन्दित, दुःखभागी, व्याधियों से ग्रस्त और अल्पायु होता है ।

सब उत्तम लक्षणों से हीन होने पर भी जो मनुष्य सदाचारयुक्त, सत्य में श्रद्धा रखने वाला और निन्दा आदि दोषों से रहित होता है वह सुख से सौ वर्ष पर्यन्त जीता है ।

सदाचार की गौरव-गरिमा का गान करते हुए 'देवी-भागवत पुराण' में कहा है—

आचारहीनं पुनन्ति वेदा यदप्यधीताः सहषड्भिरंगैः । छन्दांस्येनं मृत्युकाले त्यजन्ति नीडं शकुन्ता इव जातपक्षाः ।।

—देवी पुराण ११।२।१

आचारहीन मनुष्य को वेद भी पवित्र नहीं करते चाहे उसने षडङ्गों (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष) सहित वेद का अध्ययन किया हो । मृत्यु-समय उपस्थित होने पर वेद उसे ऐसे ही छोड़ देते हैं जैसे पक्ष=पर निकलने पर पक्षी अपने घोंसले को छोड़ देते हैं ।

इतना महत्त्व है इस सदाचार का । इसीलिए मन्त्र में दुराचार से छुड़ाने की प्रार्थना की गयी है ।

यज्ञं जुषेथाम्—गृहस्थ ने अथवा जीव ने दो प्रार्थनाएँ कीं, तब परमात्मा ने उसे उपदेश दिया—यदि तुम अमृत की प्राप्ति करना चाहते हो, यदि तुम दुराचार से दूर रहना चाहते हो तो तुम प्रीतिपूर्वक यज्ञ का सेवन करो ।

वैदिक साहित्य में यज्ञ का अर्थ बहुत व्यापक है । यज्ञ का अर्थ है—देवपूजा, संगतिकरण और दान । यज्ञ का अर्थ है—श्रेष्ठतम कर्म । यज्ञ का अर्थ है—परोपकारमय कर्म । दुराचार से पृथक् रहने और अमृत की प्राप्ति के लिए परमात्मदेव की उपासना करो, विद्वानों का सत्सङ्ग करो, दानी बनो, शुभ कर्म करो । निर्माणात्मक कर्म करो, ध्वंसात्मक कर्म न करो । अपने जीवन को योग और यज्ञमय बनाओ । आपका जीवन परोपकार का जीवन हो ।

मन्त्र का विशेष रहस्य—वेद में अधिकांश उपदेश प्रार्थनारूप में हैं । यहाँ भी मानव-जीवन को उत्थान की ओर ले जाने के लिए तीन सुन्दर उपदेश हैं—१. दुराचार अथवा पाप से बचना, २. यज्ञीय= श्रेष्ठ कर्म ही करना, और ३. मृत्यु को दूर करके अमृत को प्राप्त करना । अमृत=मोक्ष अथवा प्रभु-प्राप्ति मनुष्य-जीवन का चरम लक्ष्य है । उसका साधन है शुभ कर्म करना और पापाचरण न करना—यह निषिद्ध कर्मों का निषेध है । यदि मनुष्य और कुछ भी न करे, केवल इन तीन उपदेशों को जीवन में धारण कर ले तो वह भव-सागर से पार हो सकता है । कितने महत्त्व के उपदेश कितने थोड़े और कितने सरल शब्दों में वेद-माता ने अपने अमृत-पुत्रों के समक्ष उपस्थित कर दिये हैं ! धर्म का सार गागर में सागर की भाँति इस मन्त्र में भर दिया गया है । यह है वेद का वेदत्व !

(पृष्ठ ६ का शेष)

सदैव करुणा को धारण करते हैं कि सब प्रकार से हमारे पुत्र सुख पावें । वैसे ही ईश्वर भी सब मनुष्यादि सृष्टि पर कृपा-दृष्टि सदैव रखता है । इससे ही वेदों का उपदेश हम लोगों के लिए किया है जो परमेश्वर अपनी वेद-विद्या का उपदेश मनुष्यों के लिए न करता तो धर्म, काम और मोक्ष की सिद्धि किसी को यथावत् प्राप्त न होती, उसके बिना परम आनन्द भी किसी को नहीं होता । जैसे परम कृपालु ईश्वर ने प्रजा के लिए कन्द, मूल, फल और घास आदि छोटे-छोटे भी पदार्थ रचे हैं सो ही ईश्वर सब सुखों के प्रकाश करने वाली, सब सत्य विद्याओं से युक्त वेद-विद्या का उपदेश भी प्रजा के सुख के लिए क्यों न करता ।[1]

हमारे यहाँ से प्राप्य कुछ श्रेष्ठ प्रकाशन

वीर सावरकर कृत

हिन्दुत्व	३-५०
Indian War of Independence	३५-००
मोपला (उपन्यास)	४-००
गोमान्तक (उपन्यास)	४-००
क्रान्ति का नाद	४-५०
क्रान्तिकारी चिट्ठियाँ	३-००
शस्त्र और शास्त्र	४-५०

स्वामी विवेकानन्द कृत

विश्वशान्ति का सन्देश	३-००
कर्मयोग	२-५०
भक्तियोग	२-५०
वेदान्त भक्ति और वन्दना	२-५०
हम क्या चाहते हैं	५-००

पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार कृत

एकादशोपनिषद् (दो भाग)	२५-००
गीता भाष्य	१२-००
वैदिक संस्कृति के मूलतत्व	६-००

पं० उदयवीर शास्त्री कृत

सांख्यदर्शन का इतिहास	३०-००
वेदान्तदर्शन का इतिहास	२५-००
सांख्य सिद्धान्त	१६-००
सांख्य दर्शन	८ ००
वेदान्त दर्शन	२०-००

स्वामी व्यासदेव महाराज कृत

आत्मविज्ञान	१०-००
ब्रह्मविज्ञान	१४-००
ब्रहिरंग योग	१०-००
हिमालय का योगी	८-००

पं० शिवशंकर शर्मा काव्यतीर्थ

वैदिक इतिहासार्थ निर्णय	८-५०
ओंकार निर्णय	१-५०
जाति निर्णय	४-००
श्राद्ध निर्णय	३-५०
त्रिदेव निर्णय	४-००
वैदिक विज्ञान	२-००

वैद्य गुरुदत्त कृत

इतिहास की परम्पराएँ	१०-००
धर्म और समाजवाद	६-००
धर्म संस्कृति और राज्य	८-००
भारत गांधी नेहरू की छाया में	१०००
भारत में राष्ट्र	२-५०
गीता का अध्ययन	१५-००

स्वामी रामतीर्थ कृत

सफलता की कुञ्जी	१-५०

स्वेट मार्डन कृत

आगे बढ़ो	२-००
आप क्या नहीं कर सकते ?	१-००
अपना खर्च कैसे घटायें ?	१-००
चिन्तामुक्त कैसे हों ?	१-००
हँसते-हँसते कैसे जियें ?	१-००
जो चाहें सो कैसे पायें ?	१-००
अवसर को पहचानो	१-००
अपने आपको पहचानो	१-००
सफल कैसे हों	१-००
उन्नति कैसे करें	२-००
धन कुबेर कैसे बनें	२-००
Everyman A King	3-00
Getting On	3-00
Self Investment	3-00
Rising in the World	3-00
The Secret of Achievement	-00
Miracle of Right Thought	3-00

नरेन्द्र नाथ कृत

सिगरेट बीड़ी कैसे छोड़ें	१-००

अरविन्द नाथ कृत

एक लाख नौकरियाँ	२-००

रवि श्रीवास्तव

दो सौ स्माल स्केल इण्डस्ट्रीज	२-००

डा० लक्ष्मी नारायण शर्मा कृत

गर्भस्थिति प्रसव और शिशुपालन	२-००
हम सुखी कैसे रहें ?	२-००

बलराज मधोक कृत

भारत की सुरक्षा	४-००
भारत की विदेश नीति एवं अन्य समस्याएँ	५-००
हिन्दु राष्ट्र	१-५०
भारतीय जनसंघ	१-५०
डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी	६-००
जीत या हार (उपन्यास)	३-००

पुरुषोत्तम नागेश ओक कृत

भारतीय इतिहास की भयंकर भूलें	१०-०
भारत में मुस्लिम सुलतान	१०-००
ताजमहल हिन्दु राजभवन था	५-००

हंसराज भाटिया

फतेहपुर सीकरी एक हिन्दुनगर	६-००

शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय कृत

गृहदाह	७-००
सविता	७-००
शेष का परिचय	७-००
शेष प्रश्न	६-००
विप्रदास	६-००
पथ के दावेदार	७-००
लेन देन	६-००
देना पावना	६-०१
विजया	५-००

रवीन्द्रनाथ टैगोर

नावदुर्घटना	६-००
घर और बाहर	४-००
कुमुदिनी	६-००
त्याग का मूल्य	६-००
शिक्षा	२-५०

मुन्शी प्रेमचन्द कृत

वरदान (उपन्यास)	४-००

विमल मित्र कृत

मुझे याद है	३-५०

नानकसिंह कृत

प्रायश्चित की सीमाएँ	५-००

भगवती प्रसाद वाजपेयी

रात के मौन स्वर	५-००

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली-६

हमारी प्रकाशित प्रसारित पुस्तकें

ब्र० जगदीश विद्यार्थी कृत

- दयानन्द सूक्ति और सुभाषित　४-००
- विद्यार्थी लेखावली　३-००
- वैदिक प्रश्नोत्तरी　२-००
- वेद सौरभ　२-००
- वैदिक उदात्त भावनाएँ　२-००
- ईशोपनिषद्　२-००
- कुछ करो कुछ बनो　२-००
- विद्यार्थियों की दिनचर्या　१-५०
- मर्यादा पुरुषोत्तम राम　२-००
- दिव्य दयानन्द　१-२५
- प्रार्थना प्रकाश　१-२५
- प्रभात वन्दन　१-२५
- हास्य विनोद　१-००
- ऋग्वेद शतकम्　१-००
- अथर्ववेद शतकम्　१-००
- यजुर्वेद शतकम्　१-००
- सामवेद शतकम्　१-००

पं० भगवद्दत्त कृत

- भारतीय संस्कृति का इतिहास　६-००
- आर्य राजनीति के मूल तत्त्व　०-३०

पं० रामचन्द्र देहलवी कृत

- देहलवी लेखावली　३-५०
- ईश्वर ने दुनिया क्यों बनाई ?　०-४०

महात्मा नारायण स्वामी कृत

- आर्य समाज क्या है　०-७५
- वैदिक यज्ञ रहस्य　०-३७

प्रो० सुरेशचन्द्र वेदालंकार कृत

- मन की अपार शक्ति　१-२५
- आकर्षक व्यक्तित्व कैसे बने ?　१-५०

प्रो० नित्यानन्द वेदालंकार कृत

- पूर्व और पश्चिम　७-५०
- जीवन की राहें　४-००
- प्रार्थना दीप　२-००
- सन्ध्या विनय　१-५०
- सुराज्य की रूपरेखा　०-५०

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय कृत

- विवाह और विवाहित जीवन　२-५०

पं० राजेन्द्रजी कृत पुस्तकें

- भारत में मूर्तिपूजा　३.००
- सनातन धर्म　२.७५
- गीता विमर्श　०.७५
- तीन महापातक　०.५०
- शुद्धगीता　०.२५
- गीता की पृष्ठभूमि　०.४०
- आर्यसमाज का नवनिर्माण　०१२
- शंकर मायावाद　०.१५

महर्षि दयानन्द कृत

- उपदेश मंजरी　२-५०
- आत्मकथा　०-४०
- स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश　०-००
- वेदान्तिध्वान्त निवारण　०-२०
- वेदविरुद्ध मत खण्डन　०-३७
- शिक्षापत्रीध्वान्तनिवारण　०-३७
- आर्याभिविनय　०-७५
- आर्योद्देश्यरत्नमाला　०-१५
- ऋग्वेदभाष्य का प्रथम सूक्त　०-२५
- भ्रान्ति निवारण　०-३७
- व्यवहारभानु　०-३०
- भ्रमोच्छेदन　०-२५
- गोकरुणानिधि　०-२०
- गृहस्थाश्रम　०-६२
- काशी शास्त्रार्थ　०-२०
- सत्यधर्म विचार　०-२५
- आर्यसमाज के नियमोपनियम　०-००
- ईशोपनिषद्　० २५
- बालशिक्षक　०-३७

पं० आर्य मुनि कृत

- ईश-उपनिषद्　०-४०
- केन ,,　०-५०
- माण्डूक्य ,,　०-३०
- ऐतरेय उपनिषद्　०-५०
- तैत्तिरीय ,,　०-२५

स्वामी ब्रह्ममुनि कृत

- बृहदारण्यक उपनिषद् कथा　३-००

पं० भीमसेन कृत

- श्वेताश्वतर उपनिषद्　१-००

स्वामी अच्युतानन्द

- व्याख्यानमाला　२.५०

पं० विश्वनाथ विद्यालंकार

- बाल ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका　०.७५

पं० हरिश्चन्द्र विद्यालंकार

- वैदिक शिष्टाचार　०-३०

त्रिलोकचन्द विशारद

- महर्षि दयानन्द　१-००
- स्वामी श्रद्धानन्द　१-००
- गुरु विरजानन्द　१ ००
- प लेखराम　१-००

स्वामी वेदानन्द

- वेदपरिचय　०-३७
- स्वाध्याय संग्रह　३-००

पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

- गोरक्षा परम कर्तव्य　०-५०

पं० अत्रिदेव विद्यालंकार

- स्त्रियों का स्वास्थ्य और रोग　३-००

पं० चमूपति एम० ए०

- जीवन ज्योति　४-००

चित्र　चित्र　चित्र

साइज़ २०×३०

- महर्षि दयानन्द रंगीन　१.२५
- स्वामी श्रद्धानन्द ,,　१ ००
- पं० लेखराम ,,　१.००
- स्वामी दर्शनानन्द ,,　१.००
- प० गुरुदत्त ,,　१.००

साइज़ १८×२२

- महर्षि दयानन्द ,,　०.७५
- गुरु विरजानन्द ,,　०.७५
- स्वामी श्रद्धानन्द ,,　०.७५
- पं० लेखराम ,,　०.७५

साइज़ १५×२०

- स्वामी दयानन्द ,,　०.५०
- ला० लाजपतराय ,,　०.५०

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली-६　फोन नं० २६२७६५

मुद्रक, प्रकाशक, विजयकुमार ने सम्पादित कर बदलिया प्रिंटिंग प्रेस, दाईवाड़ा दिल्ली में



